नई दिल्ली
रविवार, 10 मई, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-29 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might — Jawaharlal Nehru

विदेश से तेल मंगाने की मजबूरी दूर करने के लिए एथनॉल पर जोर, पर इससे होगा पानी का अकाल 4

भारत-नेपाल रिश्तों में नए रोड़े से अड़चन 3

टाइगर रिजर्व से मुश्किलें 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

तिरुवनंतपुरम

सुदूर दक्षिण की बदली हवा का सबब

यूडीएफ सरकार को अब चुनावी अभियान में किए गए वादों पर अमल करने पर ध्यान देना होगा

के. ए. शाजी

4 मई को केरला ने जो फैसला सुनाया, वह महज बदलाव का वोट नहीं था। न ही यह कोरी सत्ता-विरोधी भावना की अभिव्यक्ति थी, जैसा कई टिप्पणीकारों की बातों ने आपको सोचने पर मजबूर किया होगा। यह भाजपा की विभाजनकारी राजनीति का भी एक तरह से नकार था, जिसने सांप्रदायिक आधार पर वोट बांटने की कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ी। हालांकि पार्टी फिर भी 11.4 प्रतिशत वोट पाने में कामयाब रही, जो संकेत है कि बुराई की जड़ें शायद यहां भी जमने लगी हैं। उसकी यह सफलता तीन सीटों से आगे नहीं बढ़ी, लेकिन केरलावासियों के लिए यह तीन सीटें भी बहुत ज्यादा हैं।

कांग्रेस के नेतृत्व वाले यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट (यूडीएफ) ने 140 सदस्यों वाली विधानसभा में 102 सीटों पर निर्णायक जीत हासिल की, जबकि माकपा के नेतृत्व वाले लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट (एलडीएफ) को भारी नुकसान उठाना पड़ा। यह गिरावट काफी हद तक निवर्तमान मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन के काम करने के तौर-तरीके पर फैसला भी है। उनकी व्यक्ति-पूजा वाली छवि, अपने हाथों में सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण और सत्ता में बने रहने के लिए भाजपा से भी तालमेल बिठाने की कोशिशें! अनायास नहीं था कि विजयन को 'वाम गढ़' माने जाने वाले धर्मदम में बढ़त बनाने के लिए वोटों की गिनती के सात दौर तक इंतजार करना पड़ा, और उनकी जीत का अंतिम अंतर 2021 वाले 50,000 से ज्यादा वोटों के मुकाबले काफी कम रहा। उनके तेरह कैबिनेट मंत्री चुनाव हार गए।

केरला में गुटबाजी कांग्रेस के लिए लंबे समय से बड़ी मुसीबत बनी हुई थी, जो गाहे-बगाहे खुलकर भी सामने आ जाती थी। निजी महत्वाकांक्षाएं तो नतीजों के बाद भी उभरीं, लेकिन यह भी कि चुनावों से पहले पार्टी एकजुट रही। हमेशा से मुश्किल रहा उम्मीदवारों का चयन बेहद आसानी से निपट गया। न कोई सार्वजनिक कहा-सुनी उभरी, न विरोधी गुट की सूचियां लहराईं, और न आखिरी समय में कोई बगावत दिखी।

यह संयोग की एकता नहीं थी; इसे बड़ी सावधानी से बनाए रखा गया। पार्टी महासचिव (संगठन) के.सी. वेणुगोपाल और रमेश चेन्निथला ने असंतोष संभाले रखने में अहम भूमिका निभाई। दावेदारों से संवाद बनाकर हर संभव कोशिश की, कि शिकायतें पार्टी के भीतर ही सुलझ जाएं। उनका जोर एकदम स्पष्ट रहाः 'जीतने की क्षमता को गुटों के दावों पर तरजीह दी जाएगी', और यह संदेश सभी तक पहुंचा। यही दुर्लभ संगठनिक अनुशासन चुनावी अनुशासन में तब्दील हुआ। यूडीएफ एक सुव्यवस्थित राजनीतिक इकाई की तरह नजर आया, न कि किसी एक बैनर तले जुटा कोई बेतरतीब समूह। इस एकता का ही असर था कि गठबंधन अपना ध्यान खुद पर केन्द्रित करने के बजाय मतदाताओं पर केन्द्रित कर सका , जो ऐसे मुकाबले में बेहद अहम होता है और जिसके बेहद कड़ा होने की उम्मीद पहले से थी।

फोटोः गेट्टी इमेजेज

केरला में बड़ी जीत हासिल करने के बाद खुशी जताते कांग्रेस के नेता और कार्यकर्ता

अभियान के स्तर पर देखें तो पिछली विधानसभा में विपक्ष के नेता रहे वी.डी. सतीशन नई रणनीति की मुख्य आवाज थे। उनका संदेश नपा-तुला, सुसंगत और शासन-प्रशासन से जुड़े मुद्दों पर आधारित था। नतीजों के बाद उन्होंने कहा, "यह जनादेश लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली और जवाबदेही बहाल करने के लिए है।"

कांग्रेस ने 2016 में 22 और 2021 में 21 से बढ़कर इस बार 63 तक पहुंचकर न सिर्फ अपनी सीटें बढ़ाईं, बल्कि वोट शेयर भी (2021 के 25.1 प्रतिशत से बढ़कर 28.8 प्रतिशत) बढ़ा है। इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग (आईयूएमएल) जैसे सहयोगी दलों ने भी अपने मजबूत गढ़ बरकरार रखे। मध्य केरल में कई निर्वाचन क्षेत्र यूडीएफ के पाले में लौटे। पारंपरिक रूप से वामपंथियों का गढ़ रहे मालाबार में जीत का अंतर काफी कम रहा और कई सीटों पर उलटफेर हुआ। आर्थिक चिंताओं और शासन-संबंधी मसलों के चलते, शहरी और अर्ध-शहरी निर्वाचन क्षेत्रों में भी उलटफेर दिखा।

> केरला के सामाजिक विकास में वामपंथ की भूमिका निस्संदेह बड़ी रही है, लेकिन महज विरासत के सहारे कब तक जिया जा सकता है। यूडीएफ के पास भी जीत पर इतराने का पूरा कारण है, लेकिन इस जीत से लोगों की उम्मीदें जुड़ी हुई हैं

सबसे अहम बात कि मुस्लिम और ईसाई वोटर यूडीएफ के पीछे एकजुट दिखे; यानी उसके वादों पर ज्यादा भरोसा किया। आईयूएमएल के राष्ट्रीय महासचिव पी.के. कुन्हालीकुट्टी बोले 'बदलाव चुनाव नतीजों के लिए बहुत जरूरी था'। उन्होंने कहा, "लोग ऐसी सरकार चाहते थे जो विविधता का सम्मान करे और उनकी बात सुने। यूडीएफ वह भरोसा फिर से बनाने में सफल रहा।" मालाबार में आईयूएमएल के लगातार अच्छे प्रदर्शन ने यूडीएफ की जीत की जमीन तैयार कर दी। भाजपा की तरफ से चर्च के कुछ वर्गों तक पहुंच बनाने की कोशिश, जिसका मकसद बने-बनाए सामाजिक समीकरणों को बिगाड़ना था, उसका वोटों पर कोई असर नहीं पड़ा।

वामपंथ का बिखराव

यूडीएफ को वामपंथी तंत्र से मतदाताओं की नाराजगी का भी लाभ मिला। माकपा कार्यकर्ताओं और समर्थकों के बीच स्थानीय असंतोष ने एलडीएफ को संगठनात्मक रूप से और कमजोर किया।

लेकिन एलडीएफ की हार को, उसके शासन-प्रशासन के स्वरूप की पड़ताल से ही समझा जा सकता है। पिनाराई विजयन के नेतृत्व में, सरकार ने दृढ़ता और प्रशासनिक नियंत्रण का प्रदर्शन किया। शुरुआती दिनों में, इसे ताकत और कार्यकुशलता के रूप में देखा गया; लेकिन वक्त के साथ यह कुछ और ही लगने लगा- यानी सत्ता का केन्द्रीकरण और फैसले लेने की प्रक्रिया का एक जगह सिमटना।

आंतरिक मतभेद या असहमति के अवसर कम हुए। वामपंथी खोमे के भीतरी आलोचकों में ही उस अहंकारी नेतृत्व की चर्चा होने लगी, जो विमर्श को हतोत्साहित करता था।

केरला में वामपंथ ने ऐतिहासिक रूप से सामूहिक नेतृत्व और वैचारिक जुड़ाव को अपना मूल सिद्धांत बनाया था। लेकिन विजयन ने राजनीतिक संस्कृति ऐसी बदली कि आम सहमति से शासन के बजाय, आदेशों के जरिये शासन की रीति चल पड़ी। एक कैडर-आधारित आंदोलन के लिए, यह परिवर्तन बेहद आमूलचूल था।

एलडीएफ का प्रचार 'कल्याण और बुनियादी ढांचा क्षेत्र में पिछली उपलब्धियों' पर कुछ ज्यादा ही निर्भर रहा। यह उपलब्धियां निस्संदेह अहम हैं, लेकिन केरला में इन्हें कब तक भुनाते; यहां के मतदाता, हिन्दी भाषी राज्यों की तुलना में, बेहतर बुनियादी मानव विकास संकेतकों के आदी हैं। एलडीएफ का चुनाव प्रचार बेरोजगारी, बढ़ती महंगाई जैसी चिंताओं के मामले में कमजोर साबित हुआ। भाकपा के प्रदेश सचिव बिनॉय विश्वम आत्म-मंथन की जरूरत स्वीकार करते हुए कहते हैंः "पड़ताल करनी होगी कि हम लोगों से जुड़ने में कहां फेल हुए।"

सिल्वरलाइन प्रोजेक्ट (के-रेल नाम से चर्चित), एक प्रस्तावित 530 km लंबी सेमी-हाई-स्पीड रेलवे लाइन, जो राज्य की राजधानी तिरुवनंतपुरम को दक्षिण में और कासरगोड को उत्तर में जोड़ती है, चुनाव के दौरान एक और बड़ा मुद्दा बन गया। एलडीएफ ने इसे भले ही एक बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट के तौर पर पेश किया, लेकिन इसके कारण हुए विस्थापन, इसकी आर्थिक व्यवहार्यता और पर्यावरण पर पड़ने वाले असर को लेकर काफी चिंताएं थीं। कई जिलों में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए और सरकार ने जैसा रुख अपनाया, माना गया कि उसे परवाह ही नहीं है।

यूडीएफ इस बहस को अपने फायदे के हिसाब से मोड़ने में कामयाब रहा। उसने ऐसे विकास की वकालत की जो टिकाऊ हो और लोगों पर जबरदस्ती थोपा न जाए। यह बात किसानों से लेकर मध्यमवर्गीय परिवारों, मतदाताओं के एक बड़े तबके को पसंद आई।

शेष पेज 2 पर ▸

पश्चिम बंगाल में भाजपा के उदय के मायने

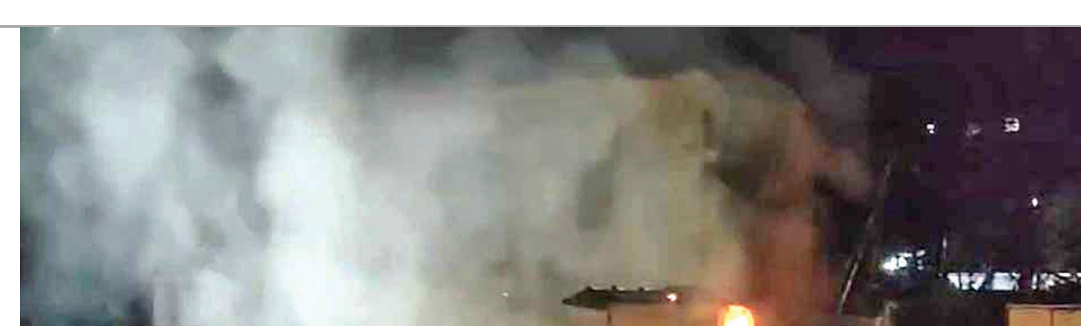

पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव के बाद बढ़ती हिंसा और आगजनी की वारदातें

जागोती बागची

बचपन की सुबहें हमेशा एक नए दिन के वादे से कहीं ज्यादा लेकर आती थीं। उनका मतलब होता था अखबार, राजनीति पर चर्चा और आकाशवाणी पर रबींद्र संगीत। बीते तमाम वर्षों में पहली बार 5 मई 2026 की सुबह यह सारी चीजें इतनी दूर की लगने लगीं, मानो किसी और ही जिंदगी का अवशेष हों।

आजाद बंगाल में पहली बार एक धुर-दक्षिणपंथी पार्टी सत्ता में आई है। विडंबना यह कि मेरा ही राज्य इस पार्टी का वैचारिक उद्‌गम स्थल रहा। जैसे-जैसे इसका शैशव का सफर आगे बढ़ा, हिन्दू महासभा से जनसंघ और फिर वयस्क रूप में भारतीय जनता पार्टी में बदलते हुए बंगाल पर राज करने का अपना सपना पूरा करने में इसे सौ साल लग गए।

यह सब मेरे दिल के बहुत करीब है। मैं पहली पीढ़ी की एक शरणार्थी की बेटी हूं। मेरे पिता को स्थिरता विरासत में नहीं मिली। उन्होंने इसे खुद बनाया था- अपना घर, गुलाब का अपना बगीचा और अपनी ट्रॉफियां खोने के बाद। वह अकेले नहीं थे; उन लाखों लोगों में से एक थे जिन्होंने उपमहाद्वीप के इतिहास में उथल-पुथल भरे दौर में सीमाएं नापी थीं। पश्चिम बंगाल पहुंचकर, एक जीवित बचे इंसान के तौर पर, वह अपने पैरों तले की जमीन और सिर पर छत की तलाश में थे। बंगाल सिर्फ एक जगह नहीं, एक संभावना थी। भाषा, संस्कृति और समुदाय के जरिये बंगाल ने विस्थापन के गहरे जख्मों के बाद, निरंतरता का एक नाज़ुक मगर सच्चा एहसास दिया।

बड़ी होती हुई, मैंने वह विस्थापन सीधे-सीधे महसूस नहीं किया, लेकिन उसकी यादों के साथ जीती रही। आज जब भाजपा सत्ता में आई है, राजनीति की भाषा ऐसी बदल चुकी है जो जानी-पहचानी-सी लगती है। इसलिए नहीं कि मैं उन्हें पहले जी चुकी हूं, बल्कि इसलिए कि मुझे यह याद विरासत में मिली है कि वे बातें हमें कहां तक ले जा सकती हैं। 'अपना न होने' का वह बेहद गहरा, जाना-पहचाना खौफ। वे शब्द, वह लहजा। पहचान, नागरिकता, सुरक्षा, अपनापन- यह अब महज सामान्य शब्द नहीं हैं। इनके निहितार्थ ऐसे हैं जो शासन-प्रशासन से कहीं आगे बढ़कर हमारे जीवन के वास्तविक अनुभवों तक पहुंचते हैं। जिस किसी के भी पारिवारिक इतिहास की जड़ें विस्थापन में निहित हैं, उसके लिए ये कोई दूर की बहसें नहीं हैं। उनके लिए ये बेहद निजी मामले हैं।

यह बदलाव, जिसे कई लोग 'रीकैलिब्रेशन' कह रहे हैं, उससे कहीं ज्यादा है। मेरे लिए, यह बंगाल का फिर से उपनिवेशीकरण है। उपनिवेशीकरण का मतलब महज किसी इलाके पर कब्जा करना नहीं होता; इसका मतलब होता है लोगों पर कब्जा करना। एसआईआर ने दमन का माहौल बना दिया। विस्थापन की यादें ताजा कर दीं- वह लगातार सताने वाला डर कि कभी भी, बिना किसी चेतावनी के, हमे अपना घर छोड़कर जाने के लिए तैयार रहना होगा।

> यह पश्चिम बंगाल का तीसरा उपनिवेशीकरण है। राज्य पर अपने संसाधनों, और अपनी अमूर्त संपदा – यानी विचारों और अभिव्यक्ति पर से नियंत्रण खोने का खतरा मंडरा रहा है

एसआईआर ने एक सोची-समझी, चुनिंदा किस्म की बेदखली शुरू कर दी है। कोलकाता और सुंदरबन के आस-पास के इलाकों की अपनी यात्राओं में मैंने लोगों, खासकर महिलाओं की बेबसी करीब से देखी। एक यात्रा के दौरान मैंने एक छोटी बच्ची को अपनी दादी की साड़ी पकड़े हुए देखा; वे दोनों एक लोकल ट्रेन के डिब्बे के दरवाजे पर खड़ी थीं। पता चला कि एसआईआर द्वारा चुनावी सूची से नाम काट दिए जाने के बाद, उस महिला ने अपनी जान लेने की कोशिश की थी, लेकिन बच गई। शायद उस छोटी बच्ची ने उसे इसलिए थाम रखा था, ताकि उसे उन चीजों से जोड़े रख सके जो अब भी मायने रखती थीं- परिवार, प्यार और अपना समाज। 5 मई की सुबह वह तस्वीर मेरे जहन में एक बार फिर, बेहद साफ और स्पष्ट रूप से उभर आई।

अपनी भावनाओं को समझ पाना आसान नहीं था। कभी निराशा, कभी गुस्सा, लेकिन ज्यादातर, जैसे-जैसे दिन बीतता गया, हताशा। मैंने बार-बार चुनावों के महत्व पर सवाल उठाया, उसके महत्वहीन हो जाने पर अफसोस जताया। मुझे उम्मीद थी कि यह दिन भी बाकी दिनों की तरह बीत जाएगा। सोच रही थी कि जब सब कुछ शांत हो जाएगा, तो क्या मैं भी चुपचाप इसे 'किस्मत' मानकर स्वीकार कर लूंगी।

बंगाल में अल्पसंख्यकों के लिए पहचान ऐतिहासिक रूप से कई परतों वाली रही है, लेकिन इससे उनकी रोजमर्रा की जिंदगी पर कोई खास खतरा नहीं रहा है। 5 मई को मैंने यह बुनियादी सच बदलते देखा- जरूरी नहीं कि उनके अधिकार छीनकर ही, बल्कि उनमें यह एहसास जगाकर कि इस देश से जुड़े होने के उनके अधिकार का फिर से मूल्यांकन हो रहा है। बेदखली का खतरा तो पहले से ही मौजूद था। उसमें विस्थापन का खतरा भी जुड़ गया है।

बंगाल के अल्पसंख्यकों यानी मुसलमानों, ईसाइयों और छोटे भाषाई या जातीय समूहों के लिए ऐसे राजनीतिक बदलाव गहरे मायने रखते हैं। ये समुदाय लंबे समय से राज्य के सामाजिक ताने-बाने का अभिन्न अंग रहे हैं। उनकी मौजूदगी कोई मामूली बात नहीं है; बल्कि यह उस राज्य का मूल तत्व है, जो कभी हुआ करता था।

बदलाव वैसी बयानबाजी के रूप में आया जिसने शक पैदा किया, ऐसे प्रशासनिक तौर-तरीकों के रूप में जो असमान लगे, और एक व्यापक नैरेटिव के रूप में जिसने कुछ खास पहचानों को अनिश्चित या शर्त आधारित बना दिया। यह बदलाव सूक्ष्म, लेकिन हर जगह मौजूद था- आसानी से अपनापन महसूस करने और हक जताने की भावना से हटकर, अब यह शर्तों के साथ सामने आ रहा था। बेदखली और विस्थापन का डर बढ़ता जा रहा था- जो हमेशा नीतियों से व्यक्त नहीं होता, बल्कि अनिश्चितता के माहौल में महसूस होने लगता है।

संभव है कि मौजूदा हालात उथल-पुथल वाले लगें, और उम्मीद जगे कि यह दौर भी गुजर जाएगा। लेकिन भारत के अन्य हिस्सों के अल्पसंख्यकों के अनुभवों से पता चलता है कि ऐसी स्थितियां एक 'न्यू नॉर्मल' बन सकती हैं।

मुझे एक अजीब-सी घबराहट महसूस हुई, मानो कोई तूफान आने को हो, जो मेरी हर उस चीज को तबाह कर देगा जो मुझे प्यारी थीं। जैसे-जैसे दिन ढलकर शाम में बदला, और फिर रात आई- जो कभी खत्म न होने वाली-सी लग रही थी, मैं उस तबाही को दहशत भरी नजरों से देखती रही। सोशल मीडिया रातों-रात नफरत और 'तुमने क्या किया' वाली बहसों के एक बदबूदार गटर में तब्दील हो चुका था।

महिला उम्मीदवारों के साथ की गई बदतमीजी मेरे लिए सबसे ज्यादा खौफनाक थी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, कम-से-कम मेरे बंगाल में तो नहीं। कई महिलाएं, जो भाजपा की ज्यादतियों के खिलाफ खुलकर बोलती रही थीं, उन्हें अपने सोशल मीडिया प्रोफाइल बंद करने पड़े। धमकियां इतनी घिनौनी थीं कि, बेमानी था कि वे सिर्फ वर्चुअल थीं। रील्स में ऐसे पुरुष और लड़के दिखाए गए जिन्होंने ममता बनर्जी का रूप धरा हुआ था और जिन्हें नंगा करके पीटा जा रहा था। तो, बंगाल में भाजपा कार्यकर्ताओं की यही असल सोच है!

पश्चिम बंगाल में सार्वजनिक स्थल लंबे समय से राजनीतिक अभिव्यक्ति का जरिया रहे हैं। लेकिन आज ये जगहें भाजपा के गुंडे-बदमाशों के कब्जे में हैं, जिन्हें पार्टी ने बंगाल पर जबरदस्ती कब्जा करने के लिए बाहर से बुलाया है।

यह कोई 'पुनर्समायोजन' नहीं है। यह बंगाल का तीसरा उपनिवेशीकरण है। राज्य पर अपने संसाधनों, और अपनी अमूर्त संपदा- यानी विचारों और अभिव्यक्ति पर से नियंत्रण खोने का खतरा मंडरा रहा है। उसे अपनी उस बौद्धिक संस्कृति में एक हिंसक और भयानक बदलाव से जूझना पड़ रहा है, जो ऐतिहासिक रूप से बहस और असहमति पर ही फली-फूली है।

मेरे लिए, 5 मई की सुबह वैसी रही मानो एक धागा था, जो टूट गया। मैं खुद को थामे रखने की कोशिश कर रही हूं- ठीक उस छोटी बच्ची की तरह, जो अपनी दादी की साड़ी को कसकर थामे रहती है। ■

जागोती बागची राजनीतिक और लैंगिक अधिकार कार्यकर्ता हैं। वर्तमान में उनका ज़्यादा समय कोलकाता और कंपाला में बीतता है

कोलकता

एसआईआर की धुंध में गुम हुआ जनमत

शायंतन घोष

फोटो: गेटी इमेजेज

पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में जीत के बाद जश्न मनाते भाजपा समर्थक

अगर 2026 के पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनावों में भाजपा की जीत राज्य के इतिहास में एक अहम मोड़ के तौर पर याद की जाएगी, तो वजह सिर्फ यह नहीं होगी कि पार्टी को भारी बहुमत (293 में से 207 सीटें) मिला, या यह कि उसने ममता बनर्जी के 15 साल के निरंतर शासन का खात्मा कर दिया। बल्कि नतीजों के बाद भड़की हिंसा, विजेताओं के जश्न में दिखी अश्लीलता और शहर के मशहूर 'न्यू मार्केट' में मांस की दुकानों पर चले बुलडोजर के लिए भी याद किया जाएगा, जिसके संकेत शुरुआत में ही मिलने लगे थे कि राज्य किस दिशा में आगे बढ़ रहा है।

पश्चिम बंगाल में वोटर लिस्ट का 'स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन' (एसआईआर) भी आसानी से भुलाया नहीं जाएगा। 23 और 29 अप्रैल को दो चरणों में हुए चुनावों तक भारत का चुनाव आयोग वोटर लिस्ट से लगभग 91 लाख नाम हटाने में कामयाब हो चुका था। यह राज्य के कुल वोटरों का लगभग 12 प्रतिशत है, जिसके बाद वोटरों की संख्या एसआईआर पूर्व की अपेक्षा लगभग 7.66 करोड़ से घटकर 6.8 करोड़ रह गई।

हटाए गए नामों का स्तर और तरीका बहुत कुछ कहता है: भाजपा की जीती हुई 105 सीटों में, यानी उसकी कुल जीती सीटों में से आधी पर हटाए गए वोटरों की संख्या, पार्टी की जीत के अंतर से भी ज्यादा रही। इनमें 86 सीटें ऐसी थीं जिन्हें भाजपा पहले कभी नहीं जीत सकी थी। बस इतना ही कहा जा सकता है कि यह आंकड़े चुनाव प्रक्रिया में भरोसा नहीं जगाते।

इस संदिग्ध एसआईआर ने एक और काम किया- इसने राज्य में मौजूद असली 'सत्ता-विरोधी लहर' से लोगों का ध्यान भटका दिया और नतीजों पर इसके असर को भी धुंधला कर दिया। निर्माण और अन्य क्षेत्रों में सालों से चले आ रहे 'सिंडिकेट राज', रोजगार के मौकों की कमी, राज्य की 'कट मनी' (हफ्ता वसूली) वाली संस्कृति और शासन की नाकामियों ने राज्य में टीएमसी की छवि अत्यंत खराब कर दी थी, और बदलाव की चाहत साफ महसूस की जा सकती थी।

यह चाहत सभी समुदायों में थी, जिसमें निराश मुसलमानों और महिलाओं का बड़ा तबका भी शामिल था, जिन्हें आम तौर पर टीएमसी समर्थक माना जाता है। भाजपा ने इसी असंतोष का फायदा उठाया, और चुनाव से पहले बड़े आर्थिक लाभ और 'विकास' के वादे तो किए ही। ऐसे में यह मानना अतिरेक नहीं होगा कि चुनावों में भारी मतदान भी बदलाव की इसी चाहत का एक आईना था।

और अगर यह मान लेना सही है कि एसआईआर ने टीएमसी के खिलाफ काम किया, तो यह मान लेना भी सही है कि तृणमूल कांग्रेस के प्रति लोगों में असली असंतोष न होता, तो भाजपा की इतनी बड़ी जीत मुमकिन नहीं होती।

नागरिक अधिकारों का सवाल

फिर भी, इन नतीजों पर एसआईआर का गहरा साया दिखता है। इस अविश्वसनीय तथ्य को नजरअंदाज करना आसान नहीं है कि तृणमूल के गढ़ इतने भयानक रूप से ढह गए। और यह भी कि अगर हम अब भी एक लोकतंत्र हैं, तो पूरी चुनावी प्रक्रिया की गहन और स्वतंत्र जांच-पड़ताल जरूरी है। एक ऐसे देश में, जहां वयस्क मताधिकार लागू है और जहां के चुनाव आयोग को यह सुनिश्चित करने का दायित्व सौंपा गया है कि 'कोई भी पीछे न छूटे', वहां लाखों मतदाताओं के नाम मतदाता सूची से यकायक हटा देना कोई मामूली बात नहीं है।

> भाजपा की जीती हुई 105 सीटों में, यानी उसकी कुल जीती सीटों में से आधी पर हटाए गए वोटरों की संख्या जीत के अंतर से ज्यादा रही। 86 सीटें ऐसी हैं जहां भाजपा पहले कभी नहीं जीती थी

वोट देने का अधिकार हमारे संविधान की आधारशिला है। वोटर लिस्ट की समय-समय पर सफाई भी जरूरी है, लेकिन इस प्रक्रिया में विवादित आधारों पर लोगों को बाहर करने के बजाय, असली नागरिकों को शामिल करने को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। हालांकि कलकत्ता हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट ने भी एसआईआर के कुछ पहलुओं की निगरानी की, लेकिन क्रियान्वयन में भारी कमियां फिर भी रह गईं। चुनाव खत्म होने पर भी लगभग 27 लाख अपीलें अनसुनी रह गईं।

पहले भी कहा जा चुका है कि कई अहम चुनावों में वोटर लिस्ट से हटे नामों की संख्या जीत के अंतर से ज्यादा थी। सिर्फ भवानीपुर का ही उदाहरण लें: ममता बनर्जी, यहां भाजपा के सुवेंदु अधिकारी से लगभग 15,000 वोटों से हार गईं, और यहां वोटर लिस्ट से हटाए गए नामों की संख्या लगभग 45,000 थी। टीएमसी के अन्य मंत्रियों के साथ भी ऐसा ही हुआ।

डेटा क्या कहता है

जहां एक ओर एसआईआर से पहले के आधार स्तर की तुलना में मतदाताओं की संख्या में कुल मिलाकर 12 प्रतिशत की कमी आई, वहीं इसका असर मुख्य रूप से शहरी इलाकों और अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में दिखा। विभिन्न संगठनों के विश्लेषण बताते हैं कि इसका सबसे ज्यादा असर मुसलमानों पर पड़ा है; राज्य की कुल आबादी में उनकी हिस्सेदारी लगभग 27 प्रतिशत है (2011 की जनगणना के अनुसार), जबकि मतदाता सूची से हटाए गए लगभग 91 लाख नामों में से लगभग 34 प्रतिशत नाम मुसलमानों के थे। अनुमान है कि 'सुनवाई के लिए लंबित' 27 लाख मामलों में से लगभग 17 लाख (यानी 63 प्रतिशत) मुसलमानों से जुड़े हैं। मुर्शिदाबाद जिले में, जहां मुसलमानों की आबादी काफी ज्यादा है, मतदाता सूची से हटाए गए नामों की संख्या को लेकर अलग-अलग अनुमान हैं, जो 4 लाख से लेकर 7 लाख के बीच बताए जा रहे हैं। मालदा और उत्तर 24 परगना जिलों में भी बड़ी संख्या में नाम हटे हैं।

कोलकाता स्थित डेटा एनालिटिक्स संस्था, 'सबर इंस्टीट्यूट' के अनुसार, कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में यह असंतुलन और भी ज्यादा था। उदाहरण के लिए, नंदीग्राम में, जहां मुस्लिम आबादी लगभग 25 प्रतिशत है, कई पूरक सूचियों से नाम हटाने के 95 प्रतिशत से ज्यादा मामले इन्हीं लोगों के थे। मटियाब्रुज और अन्य मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों में भी ऐसा ही ट्रेंड दिखा। महिलाओं को, विशेषकर अल्पसंख्यक और कामकाजी पृष्ठभूमि वाली महिलाओं को खासतौर से लक्ष्य कर सूची से हटाया गया। कहा गया कि आमतौर पर ऐसा नामों में बेमेल होने या वर्षों से चली आ रही दस्तावेजी समस्याओं के कारण हुआ।

इन सब के बावजूद, चुनाव आयोग यही कहता रहा कि प्रक्रिया पूरी तरह से निष्पक्ष थी और इसका मकसद सिर्फ अवैध और डुप्लीकेट वोटर हटाना था। आयोग ने 'शांतिपूर्ण चुनाव' करवाने का श्रेय भी खुद को दिया और कहा कि जिन इलाकों में सबसे ज्यादा नाम हटाए गए थे, वहां रिकॉर्ड संख्या में वोट पड़ना संकेत है कि असली वोटर बिना किसी डर के चुनाव में हिस्सा लेने आगे आए। जरा इस बात को भी समझने की कोशिश कीजिए! ■

सांयतन घोष 'बैटलग्राउंड बंगाल' और 'द आम आदमी पार्टी' जैसी किताबों के लेखक हैं

सुदूर दक्षिण की बदली हवा का सबब

पेज एक का शेष

विरोध प्रदर्शनों के दौरान- चाहे वे सिल्वरलाइन जैसी बड़ी परियोजनाओं को लेकर हों या स्थानीय मुद्दों पर, पुलिसिया कार्रवाई और सरकार द्वारा उसे बिना सोचे-समझे सही ठहराने की प्रवृत्ति एक असहिष्णु राज्य प्रशासन की धारणा को मजबूती देने वाली साबित हुई।

*

चुनाव पूर्व ही जनता का बदलता मिजाज भांप चुके एलडीएफ ने जोरदार प्रचार अभियान चलाकर मतदाताओं की संभावित नाराजगी टालने की कोशिश तो की, लेकिन यह जोरदार अभियान भी सरकारी दावों और रोजमर्रा की असलियत के बीच की खाई और बढ़ाने वाला ही साबित हुआ।

केरला के सामाजिक विकास में वामपंथ की भूमिका निस्संदेह बड़ी रही है, लेकिन यह भी सच है कि उसके पास अपने पुनरुद्धार का कोई सीधा रोडमैप नहीं है; तो विरासत के सहारे आखिर कब तक जिया जा सकता है। यूडीएफ के पास अपनी जीत पर इतराने का पूरा कारण है, लेकिन इस जनादेश के साथ लोगों की उम्मीदें भी बहुत ज्यादा जुड़ी हुई हैं, और केवल सुशासन ही उनकी राजनीतिक पूंजी में इजाफा कर सकता है।

केरला के इस फैसले की अहमियत राज्य की सीमाओं से कहीं आगे तक है। इसमें बेहद मुश्किल दौर से गुजर रहे विपक्ष के लिए कई सबक हैं। यूडीएफ का चुनाव प्रचार एकजुट, अनुशासित और अंदरूनी तौर पर सुसंगत था; अगुवाई करने वाले लोगों का आपसी तालमेल शानदार और संदेश भी स्पष्ट था। आपसी मतभेद सधे हुए तरीके से सुलझाए गए। हर नेता का सुर एक ही रहा और चुनाव प्रचार लक्ष्य केन्द्रित। जब आप ऐसे हालात में लड़ रहे हों, जहां पीछे हटने का कोई रास्ता न हो, तो यह 'सभी' बातें बेहद जरूरी भी तो हो जाती हैं। ■

बदले और डराने की राजनीति

पंजाब में आम आदमी पार्टी सरकार भी कर रही राजनीतिक विरोधियों को निशाना बनाने के लिए राज्य मशीनरी का इस्तेमाल

हरजिंदर

आम आदमी पार्टी छोड़कर भारतीय जनता पार्टी में शामिल हुए उन्हें अभी एक हफ्ता भी नहीं हुआ था कि पंजाब से राज्यसभा सदस्य संदीप पाठक के सांसद अवास पर पंजाब पुलिस ने धावा बोल दिया। बताया जाता है कि पाठक को पहले ही इसकी सूचना मिल गई थी और जब तक पुलिस अधिकारी पहुंचे, वह पिछले दरवाजे से निकल एक कार में सवार होकर जा चुके थे। उनके जल्दबाजी में निकलने का एक वीडियो जहां-तहां प्रसारित हो चुका है।

इसके बाद पता चला कि पंजाब के अलग-अलग जिलों में पाठक के खिलाफ दो एफआईआर दर्ज की गई हैं, जिनमें ऐसी कठोर कानूनी धाराएं लगाई गई हैं कि जमानत लेना आसान न हो। अब उनके आवास के बाहर दिल्ली पुलिस के जवान तैनात कर दिए गए। पंजाब से संदेश बिल्कुल साफ है कि अगर उन्होंने राज्य में कदम रखा तो गिरफ्तार हो जाएंगे।

यह कोई अकेला मामला नहीं है। दलबदल करने वाले सात सांसदों में शामिल एक अन्य सांसद राजेंद्र गुप्ता भी कानूनी मुश्किलों में घिर गए हैं, हालांकि उनका मामला अलग तरह का है। कपड़ा और हाउसिंग क्षेत्र में व्यापक कारोबारी हित रखने वाले उद्योगपति गुप्ता पर 2022 में भारतीय किसान यूनियन (उगराहां) ने बरनाला जिले की उनकी एक इकाई से प्रदूषण फैलाने के आरोप लगाए थे। उस समय राज्य सरकार इस मामले को लेकर उदासीन दिखाई दी थी और फिर इस पर चर्चा भी बंद हो गई।

गुप्ता के दलबदल के बाद प्रशासन अचानक सक्रिय हो गया। पंजाब राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने अब उनके खिलाफ कार्रवाई शुरू कर दी है। इस कार्रवाई के समय को लेकर सवाल उठ रहे हैं। आलोचकों का कहना है कि राज्य के कानूनों का इस्तेमाल चुनींदा तौर पर असहमत होने वाले नेताओं के खिलाफ किया जा रहा है।

राजनीतिक विरोधियों को निशाना बनाने के लिए राज्य मशीनरी का इस्तेमाल पंजाब में कोई नई बात नहीं है। आप की सरकार बनने के बाद यह लगातार हो रहा है, लेकिन फिलहाल इसमें कुछ ज्यादा ही तेजी आ गई है। भ्रष्टाचार की जांच के लिए गठित पंजाब विजिलेंस ब्यूरो को सरकार ने राजनीति का हथियार बना लिया है, जो विपक्षी नेताओं के खिलाफ काफी उत्साह से जांच में जुटा है।

उधर, केन्द्रीय एजेंसियां भी पंजाब में लगातार सक्रिय हैं। प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) इस समय पंजाब के कम-से-कम 16 राजनीतिक नेताओं की जांच कर रहा है और कई गिरफ्तारियां भी हो चुकी हैं जिनमें अधिकांश विपक्षी दलों, खासकर कांग्रेस और आम आदमी पार्टी से जुड़े नेता हैं। इस पैटर्न ने उन आरोपों को और बल दिया है कि जांच का भय राजनीतिक हित साधने के लिए दबाव के औजार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित तीन मई की एक रिपोर्ट इसी बात को बताती है। पार्टी सूत्रों के हवाले से रिपोर्ट में कहा गया है कि कई सांसदों ने संसदीय सत्र के दौरान अरविंद केजरीवाल को बताया था कि भाजपा में शामिल होने के लिए उन पर भारी दबाव डाला जा रहा है। कुछ ने अपने घरों-दफ्तरों पर छापों की बात कही, जबकि अन्य ने दावा किया कि उन्हें केन्द्रीय एजेंसियों की कार्रवाई की चेतावनी दी गई थी। संकेत साफ है कि आज के राजनीतिक माहौल में निष्ठा केवल वैचारिक नहीं होती, यह अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न भी बन चुकी है।

इसका शायद सबसे दिलचस्प उदाहरण पूर्व मुख्यमंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह हैं। जब वह कांग्रेस में थे, तब ईडी ने कथित विदेशी संपत्तियों को लेकर उनके खिलाफ कार्रवाई शुरू की थी। भाजपा में शामिल होने के बाद आम धारणा यह बनी कि मामला चुपचाप ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। लेकिन इस वर्ष की शुरुआत में अचानक ही उन्हें ईडी के जालंधर कार्यालय में पेश होने के लिए समन जारी कर दिया गया। हालांकि सिंह वहां उपस्थित नहीं हुए, लेकिन समन जारी करने वाले अधिकारी का तबादला जरूर हो गया। यह उदाहरण बताता है कि यह राजनीति कहां तक पहुंच चुकी है।

इस राजनीति की मार अगर सबसे ज्यादा किसी पर पड़ी है, तो वे हैं कांग्रेस के कई वरिष्ठ नेता। चरणजीत सिंह चन्नी, सुखपाल सिंह खैरा, भारत भूषण आशु और श्याम सुंदर अरोड़ा जैसे कांग्रेस के कई नेता ईडी के साथ ही राज्य सतर्कता एजेंसियों दोनों के ही निशाने पर बने हुए हैं। पूर्व मुख्यमंत्री चन्नी को छोड़कर इनमें से कई नेताओं को गिरफ्तार भी किया जा चुका है।

ऐसी कार्रवाइयां केवल कानूनी कदमों तक ही सीमित नहीं रहीं। एक अत्यंत विवादास्पद कदम में राज्य सरकार ने बुलडोजरों की मदद से खैरा के पैतृक घर के एक हिस्से को ध्वस्त करने का काम भी किया। ऐसी कार्रवाइयां शासन और दमन के बीच की रेखा को धुंधला कर देती हैं और कानून के शासन को लेकर बुनियादी सवाल खड़े करती हैं।

जैसे-जैसे पंजाब एक और चुनावी जंग की ओर बढ़ रहा है, दांव और ज्यादा ऊंचे होते जा रहे हैं। आगे चलकर राजनीतिक दलबदल, कानूनी लड़ाइयां और सार्वजनिक आरोप-प्रत्यारोप और तेज होने की आशंका है, जिससे अविश्वास की भावना और गहरी होगी। राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू से हालिया मुलाकात के बाद सात सांसदों के समूह के 'नेता' राघव चड्ढा ने चेतावनी दी थी कि पंजाब सरकार के पास तो सिर्फ एक ही राज्य की पुलिस है, भाजपा के पास पूरे देश में कई राज्यों की पुलिस मशीनरी है।

यह टिप्पणी समकालीन भारतीय राजनीति की असलियत को बताती है, जहां सरकार के संस्थागत स्वरूप को राजनीतिक ताकत में बदला जा चुका है। पंजाब, जो कभी अपनी कृषि अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक जीवंतता के लिए जाना जाता था, अब एक अलग प्रकार के संघर्ष के केन्द्र में खड़ा दिखाई देता है। एक ऐसा संघर्ष जिसमें कानून लागू करने वाली एजेंसियां, नियामक संस्थाएं और जांच एजेंसियां बड़े राजनीतिक शतरंज के औजार बन चुकी हैं।

प्रतिशोध की राजनीति केवल हिसाब बराबर करने तक सीमित नहीं है। यह संस्थागत निष्पक्षता के व्यवस्थित क्षरण की कहानी भी कहती है, जहां न्याय और प्रताड़ना के बीच की सीमा लगातार धुंधली होती जा रही है। मतदाताओं के लिए इसके परिणाम गंभीर हैं। जब शासन राजनीतिक युद्ध का हिस्सा बन जाता है, तब व्यवस्था में जनता की आस्था टूटने लगती है। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू से मुलाकात के बाद संवाददाताओं से बात करते आम आदमी पार्टी से अलग होने वाले राज्यसभा सांसद अशोक मित्तल, संदीप पाठक और राघव चड्ढा

> जैसे-जैसे पंजाब एक और चुनावी जंग की ओर बढ़ रहा है, दांव और ज्यादा ऊंचे होते जा रहे हैं। आगे चलकर राजनीतिक दलबदल, कानूनी लड़ाइयां और सार्वजनिक आरोप-प्रत्यारोप और तेज होने की आशंका है, जिससे अविश्वास की भावना और गहरी होगी

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

विजय ने खोल दिए राजनीति के दरवाजे

तमिलनाडु ने उस दो दलीय व्यवस्था को इस बार नकारा जिसमें सत्ता बारी-बारी से द्रमुक और अन्नाद्रमुक के हाथ आती रही

के.ए. शाजी

तमिलनाडु ने ऐसा जनादेश दिया है जिसकी व्याख्या आसान नहीं। इस उथल-पुथल के केन्द्र में हैं जोसेफ विजय चंद्रशेखर जिन्होंने यहां की राजनीति का व्याकरण ही बदल दिया। राज्य में द्रमुक और अन्नाद्रमुक के दशकों के दोहरे वर्चस्व को चुनौती देकर और संसाधन संपन्न भाजपा के जोरदार अभियान का सफलतापूर्वक मुकाबला करके, विजय ने खुद को उस व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने वाले शख्स के तौर पर स्थापित किया है, जो दशकों से अभेद्य लग रही थी।

करीब पांच दशकों से तमिलनाडु की राजनीतिक द्विदलीय व्यवस्था से तय होती रही। द्रमुक और अन्नाद्रमुक सत्ता की होड़ वाली पार्टियां नहीं, दो खिलाड़ियों वाला ऐसा राजनीतिक तंत्र थीं, जिसने कल्याणकारी योजनाओं के वितरण, शासन-प्रशासन के तौर-तरीकों और राज्य की विशिष्ट राजनीतिक पहचान को आकार दिया।

1990 और 2000 के दशक के विधानसभा चुनावों में, दोनों का वोट शेयर अक्सर 70 फीसद से ज्यादा रहा। कड़े मुकाबलों में भी यह शायद ही कभी 60 फीसद से नीचे गया हो। सरकार की बागडोर बारी-बारी से इन दोनों के पास आती रही। अब यह व्यवस्था हिल गई है और इसे बनाए रखने वाला समीकरण भी। शहरी क्षेत्रों में द्रमुक और अन्नाद्रमुक का कुल वोट शेयर पिछले चुनाव चक्र की तुलना में 8-12 फीसद घट गया। चेन्नई में, जहां पहले दो-तरफा मुकीबलों में जीत का अंतर 15 फीसद से ज्यादा होता था, अब कई निर्वाचन क्षेत्रों में जीत का अंतर पांच फीसद से भी कम रहा है।

उत्तरी तमिलनाडु, जिसमें वेल्लोर, तिरुवल्लुर और कांचीपुरम शामिल हैं, पारंपरिक वोट बैंक बंट गया। यहां विजय की टीवीके (तमिलगा वेट्री कजगम) ने पहली बार वोट देने वालों और शहरी इलाकों के निम्न-मध्यम वर्ग से उम्मीद से ज्यादा वोट हासिल किए। श्रीपेरुम्बुदूर और होसुर के औद्योगिक इलाके में, युवा मजदूरों और सर्विस सेक्टर के कर्मचारियों ने टीवीके का दामन थामा। अन्नाद्रमुक के गढ़ पश्चिमी तमिलनाडु में बदलाव ज्यादा सूक्ष्म रहा। पार्टी की पकड़ मध्यम जातियों और खेती-बाड़ी से जुड़े समुदायों के बीच अब भी मजबूत है, लेकिन बढ़त का अंतर कम हो गया है। टीवीके ने अन्नाद्रमुक के वोट शेयर में इतनी सेंध लगा दी कि चुनावी नतीजों पर इसका असर पड़ सके। कोयंबटूर, इरोड और सेलम जैसे जिलों में त्रिकोणीय मुकाबले दिखे। द्रमुक का गढ़ माना जाने वाला कावेरी डेल्टा अब भी इसी पार्टी के पक्ष में है, लेकिन यहां भी जीत का अंतर घट गया।

दक्षिणी तमिलनाडु- जिसमें मदुरै, तिरुनेलवेली और रामनाथपुरम शामिल हैं- एक जटिल तस्वीर पेश करता है। यहां व्यापक राजनीतिक उथल-पुथल के साथ-साथ जातिगत समीकरण, स्थानीय नेतृत्व और छोटे-छोटे मुद्दों ने भी चुनाव परिणामों को प्रभावित किया।

तमिलनाडु के 20 फीसद मतदाता 18-29 आयु वर्ग के हैं। यह जनसांख्यिकीय समूह वैचारिक विरासत से कम जुड़ा है और नेतृत्व के नैरेटिव, शासन की अपेक्षाओं तथा डिजिटल संचार के प्रति अधिक संवेदनशील है। मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज के पूर्व फैकल्टी सी. लक्ष्मणन कहते हैं, 'मतदान व्यवहार में यह मामूली बदलाव नहीं। पारंपरिक निष्ठाएं कमजोर पड़ रही हैं, खासकर युवा मतदाताओं में।'

तमिलनाडु विधानसभा चुनाव में मिली जीत के बाद चेन्नई में जश्न मनाते टीवीके प्रमुख जोसेफ विजय चंद्रशेखर

सिनेमा और राजनीति का मेल

तमिलनाडु सिनेमा की राजनीतिक ताकत से परिचित रहा है। एम.जी. रामचंद्रन ने अपने फिल्मी व्यक्तित्व को जन-कल्याणकारी राजनीतिक ताकत में बदला, जिसने राज्य के चुनावी परिदृश्य को नया रूप दिया। जयललिता ने एक सशक्त नेतृत्व मॉडल और व्यापक जन-कल्याणकारी कार्यक्रमों के माध्यम से उस विरासत को और सुदृढ़ किया। दूसरी ओर, एम. करुणानिधि ने द्रमुक को वैचारिक गहराई और सांगठनिक निरंतरता के आधार पर स्थापित किया।

हर दौर में सत्ता का एक स्थिर केन्द्र बना। लेकिन, मौजूदा दौर अलग है, क्योंकि यह दोहरी व्यवस्था को खत्म कर रहा है। विजय का उभार लंबी प्रक्रिया का नतीजा है। 'विजय मक्कल इयक्कम', जो शुरू में सिर्फ फैन्स का नेटवर्क था, दो दशकों में एक जन-कल्याणकारी संगठन में बदल गया। रक्तदान शिविरों, आपदा राहत कार्यों और शिक्षा सहायता कार्यक्रमों से इसने जमीनी स्तर पर अपनी मौजूदगी बनाई। जब टीवीके लॉन्च हुई, इस नेटवर्क के पास बूथ-स्तर की संरचनाएं मौजूद थीं। निकाय चुनावों में जीत ने सफलता की संभावना का संकेत दे दिया था। विश्लेषक प्रदीप दामोदरन कहते हैं, 'यह सिर्फ स्टार-पावर नहीं है। यह सालों की संगठनात्मक मेहनत का नतीजा है। विजय ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक पूंजी को राजनीतिक पूंजी में बदल दिया।'

> विजय ने एक ऐसी शासन-व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिबद्धता पर जोर दिया जो राजनीतिक सीमाओं से परे हो। सार्वजनिक मंच पर उनका यह अस्पष्ट रवैया शायद एक रणनीति का हिस्सा हो, लेकिन यह पर्यवेक्षकों को उनकी वैचारिक जड़ों के बारे में सोचने पर भी मजबूर करता है

सिनेमा ने उनके समर्थक वर्ग के साथ एक भावनात्मक जुड़ाव बनाया। उनकी फिल्में महज मनोरंजन नहीं थीं, उनमें एक राजनीतिक संदेश भी था। 'मरसल'ने टैक्स व्यवस्था और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की असमानताओं पर सवाल उठाए। 'सरकार' ने नागरिकों के अधिकारों की बात की और चुनावी धांधलियों का मुद्दा उठाया। 'मास्टर' और 'लियो' ने एक ऐसे व्यक्ति की छवि को मजबूत किया जो स्थापित सत्ता को चुनौती देता है। इन्होंने विजय के राजनीति में उतरने से पहले ही उनकी राजनीतिक पहचान बना दी। लक्ष्मणन कहते हैं, 'दर्शकों को उन्हें एक राजनीतिक हस्ती के तौर पर स्वीकारने को तैयार किया।'

गठबंधन का नया दौर

विजय का राजनीति में आगमन, दो-दलीय व्यवस्था का अंत और 'त्रिशंकु विधानसभा' ने राज्य को गठबंधन की राजनीति का सामना करने पर मजबूर किया है; यह राज्य के उस इतिहास से एक बड़ा बदलाव है जहां अब तक किसी एक पार्टी को ही स्पष्ट जनादेश मिलता रहा। यह आलेख लिखते समय, कांग्रेस ने टीवीके को सशर्त समर्थन की पेशकश की थी; वामपंथी पार्टियां टालमटोल कर रही थीं; और स्टालिन ने घोषणा की थी कि द्रमुक, टीवीके सरकार (यदि बनती है) के काम में छह माह तक 'कोई बाधा नहीं डालेगी' और बिना दखल दिए उसके कामकाज पर नजर रखेगी। टीवीके के पास 108 सीटें हैं, बहुमत से 10 सीटें दूर। कुछ रिपोर्टों के अनुसार, अन्नाद्रमुक ने बाहर से समर्थन देने की इच्छा जताई थी, जबकि कुछ अन्य लोगों का अनुमान था कि पार्टी का कोई अलग हुआ गुट सरकार बनाने में मदद कर सकता है।

इस उथल-पुथल के बीच भी, तमिलनाडु ने राष्ट्रीय ताकत का डटकर मुकाबला किया। जोरदार अभियान के बावजूद- जिसमें प्रधानमंत्री मोदी ने 'सभ्यतागत निरंतरता' का नैरेटिव गढ़ने की कोशिश की- भाजपा पैठ नहीं बना पाई; उसे सिर्फ एक सीट और 2.97 फीसद वोट मिल पाए।

द्रमुक की राजनीति के केन्द्र में रहे 'पहचान' से जुड़े मुद्दों पर विजय का अस्पष्ट रवैया, और भाजपा से सीधे टकराव से बचना- उन्हें भारी नहीं पड़ा। जीत के अगले ही दिन, मोदी के बधाई संदेश का जवाब देते हुए, विजय ने ऐसी व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्धता पर जोर दिया जो राजनीतिक सीमाओं से परे हो। सार्वजनिक मंच पर उनका यह अस्पष्ट रवैया शायद रणनीति का हिस्सा हो, लेकिन पर्यवेक्षकों को उनकी वैचारिक जड़ों के बारे में सोचने पर भी मजबूर करता है।

ऊपरी तौर पर, विजय खुद को द्रविड़ राजनीति के प्रतीकात्मक दायरे में रखते हैं। पेरियार को उनका माला पहनाना और आम्बेडकर एवं कामराज का जिक्र करना दिखाता है कि वह धर्मनिरपेक्ष, द्रविड़ परंपराओं से प्रेरणा लेते हैं। नोटबंदी, नागरिकता संशोधन अधिनियम और स्टरलाइट जैसे मुद्दों पर उनके दखल से उनके विचारों की झलक मिली है। फिर भी, इनसे कोई ठोस वैचारिक ढांचा नहीं बनता।

कुछ जानकारों ने तमिलनाडु चुनाव को द्रविड़ राजनीति के ढलान के तौर पर देखा है। लेकिन क्षेत्रीय पहचान और सामाजिक न्याय एवं भलाई के सिद्धांत मतदाताओं की उम्मीदों में गहरे बसे हैं। जिसे चुनौती मिली है, वह है इन विचारों पर किसी एक का कब्जा। राजनीतिक जानकार पी. सुंदर राजन कहते हैं, 'मतदाताओं और पार्टियों का भावनात्मक रिश्ता बदल गया है। कल्याणकारी योजनाएं अहम हैं, लेकिन काफी नहीं। मतदाता जवाबदेही पर सवाल कर रहे हैं।' शहरीकरण की भी इसमें भूमिका है। तमिलनाडु लगभग आधा शहरी है और अलग-अलग विचारों के संपर्क में आने और डिजिटल मीडिया के विस्तार ने पारंपरिक नेटवर्क को कमजोर किया है। दामोदरन कहते हैं, 'ढांचा फिर से परिभाषित हो रहा है।'

विजय के लिए अगली चुनौती शासन की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करना और अपने आंदोलन को एक ऐसे संगठन में बदलना है जो शासन चलाने में सक्षम हो। सुंदर राजन कहते हैं, 'एक आंदोलन खड़ा करने और सरकार चलाने में फर्क होता है। असली परीक्षा अभी बाकी है।' ■

भारत-नेपाल रिश्तों में नया रोड़ा

नेपाल ने भारत द्वारा कैलाश मानसरोवर यात्रा के लिए लिपुलेख दर्रे के इस्तेमाल पर आपत्ति जताकर अपना रुख साफ कर दिया है

सौरभ सेन

दक्षिण एशिया की भू-राजनीति में एक नया हॉटस्पॉट उभर आया है। 17,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित, लिपुलेख दर्रा उत्तराखंड के कुमाऊं में एक संकरा मार्ग है। यह भारत की व्यास घाटी और चीन के तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र को जोड़ता है, और कैलाश-मानसरोवर यात्रा का प्रवेश द्वार है। भारत, चीन और नेपाल की सीमाओं के मिलन-बिंदु पर अपनी अद्वितीय स्थिति के कारण, लिपुलेख पूरे हिमालयी क्षेत्र में रणनीतिक रूप से सबसे अधिक संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण स्थलों में से एक है।

3 मई को, नेपाल के विदेश मंत्रालय ने 2026 की कैलाश-मानसरोवर यात्रा के लिए लिपुलेख दर्रे के इस्तेमाल पर औपचारिक आपत्ति जताई। अपने नोट में मंत्रालय ने कहाः 'नेपाल सरकार स्पष्ट और अडिग है कि महाकाली नदी के पूर्व में स्थित लिम्पियाधुरा, लिपुलेख और कालापानी, 1816 की सुगौली संधि के समय से ही नेपाल के अभिन्न अंग हैं। नेपाल सरकार ने राजनयिक माध्यमों से भारत और चीन, दोनों के सामने कैलाश-मानसरोवर यात्रा पर अपनी चिंताएं दोहराई हैं; कहा जा रहा है कि यह यात्रा नेपाली क्षेत्र से होकर आयोजित की जाएगी... नेपाल सरकार लगातार भारत सरकार से आग्रह करती रही है कि वह इस क्षेत्र में सड़क निर्माण या विस्तार, सीमा व्यापार और तीर्थयात्रा जैसी कोई गतिविधि न करे।'

नोट में यह भी कहा गया कि भारत और चीन द्वारा तीर्थयात्रा मार्ग को अंतिम रूप देने से पहले नेपाल से नहीं पूछा गया। दिलचस्प है कि काठमांडू का यह संदेश विदेश सचिव विक्रम मिस्री की यात्रा से ठीक पहले आया। मिस्री 11 मई को काठमांडू पहुंचने वाले हैं, जहां वह द्विपक्षीय संबंधों पर चर्चा करेंगे।

इसके जवाब में, भारतीय विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता रणधीर जायसवाल ने कहाः 'भारत का रुख हमेशा एक जैसा और स्पष्ट रहा है। लिपुलेख दर्रा 1954 से कैलाश-मानसरोवर यात्रा का मार्ग रहा है और इससे यात्रा दशकों से चली आ रही है। यह कोई नई बात नहीं। जहां तक क्षेत्रीय दावों का सवाल है, भारत ने हमेशा कहा है कि ऐसे दावे न तो सही हैं और न ही ऐतिहासिक तथ्यों और सबूतों पर आधारित। क्षेत्रीय दावों का इस तरह से एकतरफा और मनमाने ढंग से विस्तार स्वीकार्य नहीं। भारत द्विपक्षीय संबंधों से जुड़े सभी मुद्दों पर नेपाल के साथ रचनात्मक बातचीत के लिए हमेशा तैयार है; इसमें बातचीत और कूटनीति के जरिये सीमा से जुड़े उन लंबित मुद्दों को सुलझाना भी शामिल है, जिन पर दोनों पक्षों की सहमति है।'

सुगौली संधि- जिसका हवाला नेपाल, लिपुलेख दर्रे पर अपने संप्रभु अधिकार पर जोर देने के लिए देता है - पर 2 दिसंबर 1815 को हस्ताक्षर किए गए थे और 4 मार्च 1816 को इसे अनुमोदित किया गया था। इस संधि ने नेपाल साम्राज्य और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच हुए अंग्रेज-नेपाल युद्ध (1814-1816) को समाप्त कर दिया, और नेपाल को लगभग एक तिहाई हिस्सा- जिसमें कुमाऊं, गढ़वाल और तराई क्षेत्र शामिल थे- सौंपने के लिए विवश कर दिया। इस संधि ने भारत-नेपाल सीमा के वर्तमान स्वरूप को भी औपचारिक रूप दिया।

नेपाल जोर देता है कि लिम्पियाधुरा, लिपुलेख और कालापानी उसके अविभाज्य अंग हैं; कि नई दिल्ली और बीजिंग, दोनों को ही आधिकारिक राजनयिक नोट भेजे गए हैं, जिनमें दोनों से इस क्षेत्र में किसी भी तरह की गतिविधि से दूर रहने को कहा गया है; और यह कि अपनी आपत्ति के बावजूद, नेपाल सीमा-संबंधी विवादों को शांतिपूर्ण राजनयिक माध्यमों से सुलझाने के लिए प्रतिबद्ध है।

हालांकि लिपुलेख के रास्ते होने वाली यात्रा कोई 'नई बात' नहीं, लेकिन जो बात नई है, वह है बालेन शाह की अगुवाई वाली सरकार के तहत नेपाल का लिपुलेख और उसके आस-पास के इलाकों पर हक जताना। एक और अहम बात यह है कि नेपाल इस मुद्दे पर भारत और चीन, दोनों से ही दूरी बनाने की कोशिश कर रहा है। क्या यह रवैया नेपाल की जेन-जेड पीढ़ी की बेबाक और सीधी-सीधी चुनौती देने वाली सोच को दिखाता है; या फिर कोई 'अदृश्य हाथ' है जो नेपाल की विदेश नीति को चला रहा है?

> सीमा पर नेपाल के अपने क्षेत्रीय अधिकारों के दावे को उस बढ़ती हुई भावना के संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जो अब भारत को एक भरोसेमंद दोस्त या साझीदार नहीं मानती। यह भावना 2015-16 की नाकेबंदी के बाद और मजबूत हुई है

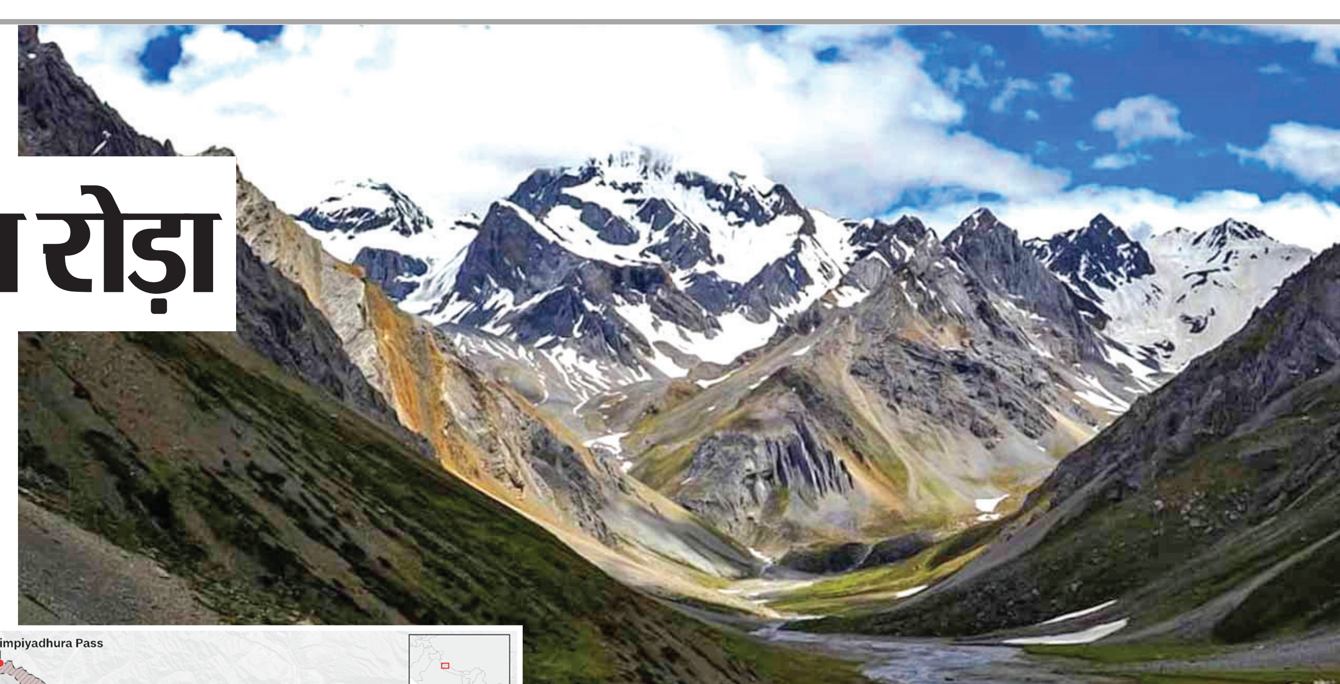

लिपुलेख दर्रे के इस्तेमाल पर नेपाल की आपत्ति से भारत के साथ रिश्तों पर नए सिरे से खड़ा हुआ विवाद

*

नेपाल के नए प्रधानमंत्री बालेन शाह आत्मविश्वास की लहर पर सवार दिखते हैं। सोशल मीडिया पर चल रही चर्चाओं में भारत के साथ अपने संबंधों में दबाव बनाने वाले बिंदुओं के तौर पर अक्साई चिन और दार्जिलिंग की पहचान की गई है। वायरल वीडियो में तर्क दिया जा रहा है कि, 'अगर अक्साई चिन को भारत का हिस्सा दिखाया जा सकता है, तो लिपुलेख को नेपाल का हिस्सा क्यों नहीं?' इसी तरह के कुछ अन्य वीडियो में मांग भी की जा रही है कि दार्जिलिंग को नेपाल के हिस्से के तौर पर दिखाया जाए।

अब तक, शाह एक रहस्यमयी हस्ती बने हुए हैं, यहां तक कि नेपाल में भी। वह सोशल मीडिया के जरिये ही बात करते हैं और इंटरव्यू देने या प्रेस कॉन्फ्रेंस से बच रहे हैं। खास यह है कि उन्होंने प्रोटोकॉल का हवाला देते हुए, भारत में अमेरिकी राजदूत और दक्षिण व मध्य एशियाई मामलों के विशेष दूत सर्जियो गोर से नेपाल यात्रा के दौरान मिलने से इनकार कर दिया। अपुष्ट रिपोर्टों के अनुसार, शाह को भारत न जाने की सलाह दी गई है, जब तक कि भारत पहुंचने पर उनका स्वागत भारतीय प्रधानमंत्री स्वयं न करें। यह भी स्पष्ट नहीं है कि मिस्री उनसे मिल पाएंगे या नहीं।

30 अप्रैल को, गोर के एवरेस्ट बेस कैंप जाने से ठीक एक दिन पहले, नेपाल के गृह मंत्रालय ने 'एयरलिफ्ट टेक्नोलॉजी' नामक एक नेपाली टेक स्टार्टअप और एवरेस्ट अभियान संचालक के कामकाज को, कुछ अज्ञात सुरक्षा चिंताओं का हवाला देते हुए निलंबित कर दिया। गोर को उम्मीद थी कि वह कचरा और सामान एयरलिफ्ट करने में इस्तेमाल होने वाले ड्रोन्स के फ्लाइट डेमो देख पाएंगे। 'काठमांडू पोस्ट' के अनुसार, यह आदेश दो ड्रोन्स को निशाना बनाता हुआ लग रहा था-चीन में बना डीजेआई फ्लाईकार्ट 100 और अमेरिका में बना फ्रीफ्लाई सिस्टम्स अल्टा एक्स जेन 2- ये दोनों ही एयरलिफ्ट ऑपरेशन से जुड़े हैं और दोनों में ही 3डी-मैपिंग क्षमता है। पांच दिनों के बाद यह निलंबन आदेश हटा लिया गया।

नेपाल के लेखक, टिप्पणीकार और ट्रैवल ब्लॉगर केदार शर्मा ने 'संडे नवजीवन' को बताया, 'जब भी लिपुलेख का मुद्दा उठा है, नेपाल ने अपने क्षेत्रीय अधिकार पर जोर दिया है। नेपाल के क्षेत्रीय दावे को नजरअंदाज करते हुए भारतीय तीर्थयात्रियों और व्यापारियों को लिपुलेख दर्रे का इस्तेमाल करने की अनुमति देकर भारतीय विदेश मंत्रालय संभवतः चीन को यही संदेश देना चाह रहा है कि नेपाल के साथ सीमा संबंधी विचार-विमर्श को वह उतना महत्व नहीं देता।'

शर्मा ने लिपुलेख पर भारत के दावे को समझाने के लिए हिंदी की कहावत 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' का इस्तेमाल किया, और अमेरिका या दूसरे देशों पर भड़काने वाले एजेंट की भूमिका निभाने के आरोपों को महज साजिश कहकर खारिज कर दिया- 'हम तो तब भी सीआईए का हाथ देखते हैं, जब गली के कुत्ते आपस में लड़ते हैं!'

लेकिन, सीमा पर नेपाल के अपने क्षेत्रीय अधिकारों के दावे को, उस बढ़ती हुई भावना के संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जो अब भारत को एक भरोसेमंद दोस्त या साझीदार नहीं मानती। यह भावना 2015-16 की नाकेबंदी के बाद और मजबूत हुई है, जब भारत ने चार-साढ़े चार महीनों तक जमीन से घिरे नेपाल में भारत की तरफ से जरूरी चीजों- ईंधन, दवा और खाने-पीने के सामान- भेजने पर रोक लगा दी थी। हालांकि भारत ने किसी भी आधिकारिक नाकेबंदी से इनकार किया और इसका दोष नेपाल के मधेसी समुदाय में फैली अशांति पर मढ़ा, लेकिन इस व्यवधान के कारण गंभीर मानवीय संकट पैदा हुआ जो अप्रैल 2015 के भूकंप के बाद और बदतर हो गया।

तब से, आम धारणा है कि भारत ने नाकेबंदी लागू करके और उसका लाभ उठाकर नेपाल को अपने नए संविधान में मधेसियों की आकांक्षाओं को शामिल करने के लिए मजबूर किया। भारतीय सेना में गोरखाओं की भर्ती कम करने और उन्हें इसके बजाय 'अग्निपथ योजना' चुनने की सलाह देने के भारत के फैसले से भी दोनों देशों के संबंधों में खटास आई है।

नेपाल के भीतर, राय बंटी लगती है। कई टीकाकारों का कहना है कि नेपाल ईंधन और खाद जैसी जरूरी चीजों के लिए भारत पर निर्भर है। नेपाल में आरएसएस की गतिविधियां और भारत का अपने इस छोटे पड़ोसी के प्रति तिरस्कार- जो सोशल मीडिया पर जाहिर होता है- इस रिश्ते को और भी पेचीदा बना देता है। इसी वजह से, नेपाल में अमेरिका का कोई सैन्य या अन्य अड्डा बनाने की मांग उठने लगी है।

फिलहाल ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री बालेन शाह, अपनी मधेसी पृष्ठभूमि और भारत से जुड़ाव के बावजूद, लिपुलेख पर अपनी पकड़ ढीली करने के मूड में नहीं हैं। ■

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले स्वतंत्र लेखक और टीकाकार हैं

ईंधन के लोभ में सोख रहे भूजल

एथनॉल को आंखें मूंदकर बढ़ावा दिए जाने से महाराष्ट्र के सूखाग्रस्त इलाकों के लिए और गहराता पेयजल संकट

जयदीप हार्दिकर

आज केवल आज की चिंता करो। महाराष्ट्र के सूखा-ग्रस्त जिले धाराशिव के तकविकी गांव के किसानों ने 2013 की गर्मियों में यही रणनीति अपनाई थी। पानी की भारी कमी ने गांव की अर्थव्यवस्था तबाह कर दी थी और लोग गांव छोड़कर जाने लगे थे। तब से मराठवाड़ा क्षेत्र-जिसमें तकविकी भी आता है-में तीन और भयानक सूखे पड़ चुके हैं; और हर बार, गांव के कुछ लोग घर-बार छोड़ते गए।

उस साल महाराष्ट्र ने 8 करोड़ टन गन्ने की पेराई करके 80 लाख क्विंटल चीनी का उत्पादन किया था। धाराशिव की चीनी मिलों ने 25 लाख टन से भी ज्यादा गन्ने की रिकॉर्ड पेराई की। इस गांव और राज्य के सूख प्रभावित दर्जनों गांवों की यात्रा के दौरान मैंने एक विरोधाभास साफ देखाः जिन गांवों में पीने के पानी के लिए टैंकरों की अधिक मांग होती है, वहीं भारी मात्रा में गन्ने की फसल उगाई जाती है जिसके लिए काफी पानी की जरूरत होती है। हर साल, किसान गन्ने की सिंचाई के लिए गहरे बोरवेल खोदते हैं; यह पानी उन फैक्टरियों को जाता है जो लाखों टन चीनी और अब एथनॉल बनाती हैं। दूसरी ओर, लोगों का बड़ा तबका पीने के पानी के लिए तरसता रहता है। कुछ साल पहले, महाराष्ट्र सरकार की 'ग्राउंडवॉटर सर्वेज एंड डेवलपमेंट एजेंसी' के एक भूविज्ञानी ने मुझे बताया था कि मराठवाड़ा क्षेत्र फलों के बाग और गन्ने की खेती के लिए 'पुरापाषाण काल' का पानी भी सोख रहा है। यह संकट इतना गंभीर है।

2013 में जब एक जिला कलेक्टर ने मुख्यमंत्री पृथ्वीराज चव्हाण को चिट्ठी लिखकर अनुरोध किया कि पीने के पानी की जरूरतें पूरी करने के लिए दीवाली से मार्च तक चलने वाले गन्ने की पिराई के सीजन को रोक दिया जाए, तो पूरा राजनीतिक वर्ग उनके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। उन्हें फटकार मिली और तबादला कर दिया गया। लोगों को पानी खरीदना पड़ा, लेकिन चीनी मिलें लाखों लीटर पानी का इस्तेमाल करती रहीं।

अब आते हैं 2026 पर। पानी का संकट और गहरा है, फिर भी केन्द्र सरकार चाहती है कि गाड़ियां 100 फीसद एथनॉल पर चलें ताकि पश्चिम एशिया में युद्ध के कारण पैदा ईंधन संकट से निपटा जा सके। सरकार चीनी मिलों के लिए रेगुलेटरी फ्रेमवर्क बदलना चाहती है, ताकि चीनी, शीरा और दूसरे बाय-प्रोडक्ट्स के साथ-साथ एथनॉल भी इसमें शामिल हो सके। भारत वाहन तेल में 100 फीसद इथेनॉल ब्लेंडिंग का स्तर पाना चाहता है। तेल कंपनियां एथनॉल खरीद बढ़ा रही हैं और महाराष्ट्र की चीनी मिलें अपनी डिस्टिलेशन क्षमता। पिछले पांच सालों से, केन्द्र और राज्य सरकारों ने निजी और सहकारी चीनी मिलों को इथेनॉल उत्पादन में निवेश के लिए प्रोत्साहित किया है। लेकिन एथनॉल का मामला सिर्फ ऊर्जा से जुड़ा नहीं, बल्कि इस बारे में भी है कि पानी का इस्तेमाल कैसे किया जा रहा। हाल ही में नरेन्द्र मोदी सरकार ने भारत में कारों को पूरी तरह एथनॉल पर चलाने की दिशा में कदम उठाया। आम स्थिति में इसका स्वागत होता लेकिन यह आम स्थिति नहीं। पश्चिम एशिया के तनाव ने वैश्विक तेल आपूर्ति को बाधित किया है , जिससे ईंधन की कमी का डर बढ़ गया है।

अप्रैल 2026 के शुरू में, उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय ने 'गन्ना (नियंत्रण) आदेश 2026' का मसौदा जारी किया, जिसका उद्देश्य 1966 के आदेश की जगह लेना और 'चीनी क्षेत्र का आधुनिकीकरण' है। इसके लक्ष्यों और कारणों के अलावा, मसौदे के 14 मुख्य प्रस्तावों में एक यह है कि रेगुलेटरी दायरे में गन्ने के रस, सिरप और शीरे से इथेनॉल उत्पादन भी शामिल किया जाए। इस नीति में दो गंभीर जोखिम छिपे हैं।

पानी की कमी

मौसम विभाग समेत कई एजेंसियों के पूर्वानुमानों के मुताबिक, अल नीनो के कारण, 2026-27 का मॉनसून सामान्य से 8 फीसद कम रह सकता है। केन्द्र सरकार से लेकर नगर पालिकाओं तक सब पानी की कमी से निपटने की तैयारी में जुटे हैं। मुंबई जैसे शहरों ने पानी की कटौती की घोषणा की है। इस पृष्ठभूमि में, एथनॉल उत्पादन को बढ़ावा देने पर सवाल खड़ा होता है। एक लीटर इथेनॉल बनाने में 10,000 लीटर तक पानी लग सकता है। यहां तक कि जब चावल या मक्का जैसे अनाजों से इसे बनाया जाता है, तब भी इसकी क्षमता सीमित होती है- एक टन अनाज से लगभग 475 लीटर एथनॉल बनता है। तो इथेनॉल की ज्यादा मिक्सिंग का फैसला आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से कितना सही है?

भारत में एथनॉल मुख्य रूप से गन्ने से बनता है। अकेले महाराष्ट्र में करीब 350 चीनी मिलों ने इथेनॉल बनाने पर भारी निवेश किया है। फिर भी, एक टन गन्ने के रस से सिर्फ 70 लीटर एथनॉल बनता है। एथनॉल बनाने की प्रक्रिया दो तरह से पानी पीती है- पहला, गन्ने की फसल में ज्यादा पानी चाहिए होता है, और दूसरा, उससे इथेनॉल बनाने में।

जरूरत से ज्यादा उत्पादन क्षमता

मौजूदा ऊर्जा संकट से पहले, सरकारी प्रोत्साहन के कारण इथेनॉल उत्पादन क्षमता एक दशक पहले के 518 करोड़ लीटर से बढ़कर आज 2,000 करोड़ लीटर हो गई है। हालांकि, अभी मांग 1,100 करोड़ लीटर है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन क्षमता मांग से कहीं ज्यादा है।

गन्ने से बनने वाला एथनॉल चावल और मक्का जैसे अनाजों से बनने वाले 'नए' एथनॉल के आगे फीका पड़ता जा रहा है। ऐसा लगता है कि सरकारी खरीद नीतियां नए उत्पादकों के पक्ष में हैं, जिससे गन्ने पर आधारित पारंपरिक एथनॉल उत्पादक- मुख्यतः चीनी मिलें- अनिश्चितता का सामना कर रही हैं। महाराष्ट्र और अन्य जगहों पर, करीब 350 उत्पादकों ने पिछली नीतियों से प्रोत्साहित होकर भारी निवेश किया है। लेकिन तेल कंपनियां कुल उत्पादन का आधा ही खरीद रही हैं, जिससे उत्पादकों को निवेश वापस पाने में मुश्किल हो रही है। अगर भारत 20 फीसद ब्लेंडिंग से 85-100 फीसद एथनॉल पर जाता है, तो मांग में जबरदस्त वृद्धि होगी। लेकिन एथनॉल का ऊर्जा घनत्व पेट्रोल-डीजल से कम होता है। यानी समान दूरी तय करने में गाड़ियों को ज्यादा एथनॉल की जरूरत होगी और ज्यादा खपत होने से एथनॉल की मांग बढ़ेगी। इसका सीधा मतलब है कि पानी की खपत भी बढ़ेगी।

अभी, भारत के फसल पैटर्न करीब 30 फीसद तक की एथनॉल ब्लेंडिंग को सपोर्ट कर सकते हैं। 85-100 फीसद तक पहुंचने के लिए एथनॉल बनाने वाली फसलों की उपज में भारी वृद्धि करनी होगी। इससे और भी चिंताएं पैदा होती हैं। गन्ना और चावल ज्यादा पानी वाली फसलें हैं। फिर भी, राजनीतिक कारणों और खाद्य सुरक्षा की वजह से उन्हें सरकारी मदद मिलती रही। इससे जल संसाधन पर दबाव बढ़ रहा है। इसके अलावा, जरूरत से ज्यादा सिंचाई से मिट्टी में खारापन और जमीन का बंजर होना जैसे खतरे भी पैदा होते हैं, जैसा कि सतारा में दिखा। एथनॉल ने इस क्षेत्र के आर्थिक समीकरण को बदल दिया है। अब मिलों के पास वैकल्पिक बाजार है। जैव-ईंधन के प्रबल समर्थक नितिन गडकरी ने हाल ही में दावा किया कि एथनॉल के बिना पश्चिमी महाराष्ट्र की ज्यादातर मिलें बंद हो गई होतीं। शक नहीं कि एथनॉल ने मिलों को फिर जिंदा किया है, लेकिन इसका विस्तार गन्ने और पानी पर निर्भर है, जो पानी की उपलब्धता और खाद्य सुरक्षा को नजरअंदाज करता है।

महाराष्ट्र के एथनॉल की ओर मुड़ने के पीछे एक जानी-पहचानी राजनीतिक अर्थव्यवस्था है जो नए रूप में सामने आई है। सहकारी चीनी मिलें निजी कृषि-औद्योगिक केन्द्रों में बदल गई हैं, जो गन्ने को चीनी, बिजली और ईंधन में बदलती हैं। मिलों पर नियंत्रण का मतलब है ऋण समितियों, परिवहन ठेकों, मजदूर नेटवर्क, सब्सिडी और आखिरकार चुनावी प्रभाव पर नियंत्रण- खासकर पश्चिमी महाराष्ट्र में। इथेनॉल इस नेटवर्क को मजबूत करता है। तेल कंपनियों द्वारा पक्की खरीद के जरिये नकदी के प्रवाह को बेहतर बनाकर, यह सहकारी और निजी, दोनों तरह की मिलों को मजबूत करता है, जो अलग-अलग पार्टियों के राजनीतिक परिवारों से जुड़ी हैं।

इसके लाभार्थी कई स्तरों पर हैंः मिल मालिकों को आय के नए स्रोत मिलते हैं, राजनीतिक लोग अपना प्रभाव मजबूत करते हैं, और बड़े गन्ना किसानों को ज्यादा और तय भुगतान से लाभ होता है। हालांकि, इसके नुकसान अधिक व्यापक हैं- मराठवाड़ा जैसे क्षेत्रों को इसका बोझ उठाना पड़ता है, जहां गन्ना उत्पादन के लिए भूजल का अत्यधिक दोहन होता है, और छोटे किसान भी अधिक पानी वाली फसल उगाने को मजबूर हैं क्योंकि मिलें स्थानीय फसल पैटर्न निर्धारित करती हैं। दरअसल, एथनॉल ने चीनी अर्थव्यवस्था का लोकतंत्रीकरण नहीं किया; इसने इसे सहकारी नेतृत्व वाले मॉडल से सहकारी समितियों और निजी मिलों की संकर व्यवस्था की ओर मोड़ दिया है, जिससे जल, पूंजी और राजनीतिक शक्ति का संबंध और मजबूत हुआ।

जैसा कि अमे तिरोडकर ने फ्रंटलाइन में लिखा है, 'चीनी ने महाराष्ट्र की सहकारी शक्ति संरचना का निर्माण किया' जो अब दबाव में है। पारंपरिक सहकारी मॉडल नए रूप में सामने आ रहा है। पूंजी और राजनीतिक समर्थन वाली मिलें डिस्टिलरी में निवेश करके राजस्व के नए स्रोत सुरक्षित कर रही हैं, जबकि कमजोर सहकारी समितियां हजारों करोड़ के बकाये से जूझ रही हैं। इसका परिणाम एक नया स्वरूप हैः व्यापक सहकारी नेटवर्क से एक अधिक असमान परिदृश्य की ओर, जहां निजी मिलें और राजनीतिक रूप से संबद्ध संस्थाएं अपना नियंत्रण मजबूत कर रही हैं।

इस परिवर्तन में, एथनॉल एक स्थिरकर्ता और फिल्टर दोनों की भूमिका में है - निवेश करने वालों को लाभ पहुंचा रहा और निवेश न कर पाने वालों को हाशिए पर धकेल रहा। लाभ मिल मालिकों और राजनीतिक नेताओं को मिल रहा है, जबकि जोखिम - जल की कमी, फसलों पर निर्भरता और आय में अस्थिरता - किसानों और मजदूरों पर थोपे जा रहे हैं।

महाराष्ट्र में, गन्ना सिर्फ फसल नहीं, बल्कि सत्ता की एक व्यवस्था है। कोल्हापुर और सांगली से लेकर अहमदनगर और सोलापुर तक, चीनी का भूगोल राजनीतिक भूगोल से जुड़ा है। ऐतिहासिक रूप से, सहकारी मिलों ने स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूती दी है, और कर्ज, रोजगार और चुनावी लामबंदी तक पहुंच को आकार दिया है। इथेनॉल इस व्यवस्था को और मजबूत करता है। मिलों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाकर, यह चीनी नेटवर्क की संस्थागत सत्ता को और पक्का करता है। यह किसानों को गन्ने की खेती तक सीमित करता है। अध्ययन कहते हैं कि महाराष्ट्र में गन्ना उत्पादन में वृद्धि उत्पादकता की तुलना में खेती के रकबे में हुई बढ़ोतरी के कारण ज्यादा हुई है; यह संकेत है कि यह फसल अलग-अलग क्षेत्रों में लगातार फैल रही है। यह विस्तार अब ज्यादातर मराठवाड़ा जैसे सूखा-संभावित क्षेत्रों, या पश्चिमी महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों की ओर बढ़ रहा है, जहां इसके पर्यावरणीय दुष्परिणाम कहीं ज्यादा हैं।

इस बदलाव का असर पूरे महाराष्ट्र में एक जैसा नहीं है। पश्चिमी महाराष्ट्र, जहां नहरों से सिंचाई की व्यवस्था है और बारिश भी ज्यादा होती है, वहां ऐतिहासिक रूप से गन्ने की खेती को बढ़ावा मिला है। कोल्हापुर, सांगली और पुणे जैसे इलाके 'शुगर बेल्ट' का मुख्य हिस्सा हैं। लेकिन मराठवाड़ा और विदर्भ के कुछ हिस्सों की कहानी अलग है। यहां, गन्ने की खेती भूजल पर निर्भर है। बार-बार पड़ने वाले सूखे ने इस मॉडल की कमजोरी को पहले ही उजागर कर दिया है। इसके बावजूद, चीनी मिलों से मिलने वाले आर्थिक फायदे की वजह से इन इलाकों में गन्ने की खेती का रकबा बढ़ रहा है। एथनॉल की वजह से यह चलन और तेज हो सकता है। बदलाव का असर फसल विविधता पर भी पड़ रहा है। जैसे-जैसे ज्यादा जमीन गन्ने के लिए इस्तेमाल हो रही है, मोटे अनाज, दालों और तिलहनों के लिए पानी उपलब्धता घटती जा रही है- ये ऐसी फसलें हैं जो पोषण और पर्यावरण, दोनों लिहाज से सूखी जमीन के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं। असल में, एथनॉल जहां राज्य के लिए ऊर्जा के नए विकल्प खोल रहा है, वहीं राज्य के कृषि विकल्पों को सीमित कर रहा है और जल संकट को गहरा रहा है। ■

जयदीप हार्दिकर नागपुर निवासी वरिष्ठ पत्रकार हैं। उन्होंने 'रामराव: द स्टोरी ऑफ इंडियाज फार्म क्राइसिस' किताब लिखी है

भारत की एथनॉल मिश्रण नीति महाराष्ट्र के भूजल को धीरे-धीरे रसातल में पहुंचा दे सकती है

> एक लीटर एथनॉल बनाने के लिए 10,000 लीटर तक पानी की जरूरत होती है। एक टन गन्ने के रस से सिर्फ 70 लीटर एथनॉल बनता है। फिर भी, केन्द्र सरकार चाहती है कि गाड़ियां 100 फीसद एथनॉल से चलें

नवजीवन NATIONAL HERALD قومی آواز
www.navjivanindia.com www.nationalheraldindia.com www.qaumiawaz.com

लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष समाज के लिए
स्वतंत्र, निष्पक्ष और भयमुक्त पत्रकारिता

COVER PRICE ₹15
COVER PRICE ₹20

संडे नवजीवन
145 Issues
Total Price: ₹2,000

NATIONAL HERALD ON SUNDAY
105 Issues
Total Price: ₹2,000

105 Issues of National Herald on Sunday & 145 Issues of संडे नवजीवन
Total Price: ₹4,000

SUBSCRIBE
www.nationalheraldindia.com/subscribe

For your copy of your favourite Newspaper The National Herald on Sunday ask your newspaper vendor or login to **www.nationalheraldindia.com/subscribe** to subscribe or mail to circulation **circulation.ajl@nationalheraldindia.com** or write to subscription cell **The Associated Journals Limited, Herald House, 5-A, Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002** or call **011-47636321/24**

भाजपा का नफरत पर एकाधिकार

अगर मुख्य दिलचस्पी मुसलमानों को धमकाने और परेशान करने में है, तो आपके लिए सिर्फ एक ही पार्टी है

आकार पटेल

अगर आप एक सामान्य व्यक्ति हैं, तो आपके पास वोट और सपोर्ट करने के लिए बहुत सारे राजनीतिक दल हैं। डीएमके, एडीएमके, टीडीपी, पीडीपी, टीएमसी, कांग्रेस, जेडीएस, जेडीयू, एनसीपी, टीआरएस, सीपीएम, सीपीआई और नई बनी टीवीके आदि पार्टियां हैं। अलग-अलग मंचों पर पार्टियों की कोई कमी नहीं है।

लेकिन अगर आप मुख्यतयः भारतीय अल्पसंख्यकों, खासतौर से मुस्लिमों को धमकाने और परेशान करने के इच्छुक हैं, तो इसके लिए सिर्फ एक ही पार्टी है- भारतीय जनता पार्टी यानी भाजपा। भाग्यवश यह राष्ट्रव्यापी पार्टी है और ज्यादातर राज्यों में इसकी मौजूदगी है। यह पार्टी पूर्वाग्रह से ग्रस्त भारतीयों को ठीक उसी तरह एकजुट करती है, जिस तरह क्रिकेट और अंग्रेजी भाषा करती हैं—यानी यह क्षेत्रीय सीमाओं को पार कर जाती है।

हाल ही में मीडिया के साथ बातचीत में एक विश्लेषक ने इसी बात को एक अलग अंदाज में कहा। भाजपा के प्रति आकर्षण के बारे में उन्होंने कहाः “जिस किसी की भी विचारधारा दक्षिणपंथी है, उसके पास सिर्फ एक ही पार्टी का विकल्प है। दूसरी तरफ, इतनी ज्यादा प्रतिस्पर्धा है कि वोट बंट जाता है।”

फोटो: गेटी इमेजेज

दिल्ली में 2020 में जला दी गई मस्जिद इसका गवाह है कि नफरती गिरोह किस तरह काम करता है

आइए समझने की कोशिश करें कि ऐसा क्यों है, क्योंकि यह है तो सचः जब बात काम करने के तरीके की आती है, तो भाजपा का कोई मुकाबला नहीं है। 'राइट-विंग' शब्द असल में नफरत पर आधारित राजनीति का ही एक रूप है, और हम आगे देखेंगे कि ऐसा क्यों है। सबसे पहले, यह मान लेने के बाद कि भाजपा का कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है, हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि वह एक सीधा-सादा और आसानी से समझ में आने वाला फॉर्मूला पेश करती है।

'मुझे मुसलमानों से नफरत है'—इस बात को और ज्यादा समझाने की जरूरत नहीं है। यह साफ, सीधा और असरदार जुमला है। वोटर को यह समझने के लिए कि पार्टी किस चीज का प्रतिनिधित्व करती है, उसके घोषणापत्र को देखने की ज़रूरत नहीं है। भाजपा की विचारधारा का निचोड़ यही है कि वह अल्पसंख्यकों के खिलाफ है।

अगर आप ऐसी किसी पार्टी की तलाश में हैं जो यह काम करती हो, तो आपके पास एक ऐसी पार्टी मौजूद है जिसकी राष्ट्रीय स्तर पर मौजूदगी है और जिसने इस मुद्दे पर दशकों से अपनी काबिलियत साबित की है। तो फिर किसी और पार्टी की तलाश क्यों करें? इसकी कोई जरूरत ही नहीं है।

पर एक सवाल उठता हैः क्या भाजपा को किसी ऐसी दूसरी पार्टी से मुकाबले का सामना नहीं करना पड़ सकता, जिसका रुख यह होः “लेकिन मैं मुसलमानों से ज्यादा नफरत करता हूं।”?

ऐसा हो सकता है और शायद होगा भी, लेकिन भाजपा के भीतर भी इस रुख को पूरी तरह से सही माना जा सकता है—जैसा कि हम शायद तब देखेंगे, जब भाजपा में उत्तराधिकार की लड़ाई शुरू होगी। भाजपा की विचारधारा का जो भी दायरा है, वह अल्पसंख्यकों को नापसंद करने से लेकर उनसे नफरत करने तक फैला हुआ है; और इस दायरे के भीतर आने वाली सभी भावनाएं स्वीकार्य हैं।

यही पहला और सबसे अहम कारण है कि भाजपा के काम करने के तरीके का कोई मुकाबला नहीं हैः यह सचमुच अल्पसंख्यकों के खिलाफ है। दूसरा कारण यह है कि दूसरी पार्टियां या तो वह काम करना ही नहीं चुनतीं जिस पर भाजपा का ध्यान होता है, या वे उसे कभी-कभार ही करती हैं, और इस वजह से वे सच्ची नहीं लगतीं। जैसा कि हम जानते हैं, भारत में कई पार्टियों ने सांप्रदायिकता का सहारा लिया है। लेकिन सांप्रदायिकता उनकी राजनीति या उनकी पहचान का मुख्य केन्द्र नहीं है। भाजपा अकेली ऐसी पार्टी नहीं है जिसने बंटवारे और नफरत से फायदा उठाया हो, लेकिन यह अकेली ऐसी पार्टी है जिसने इसे अपना मुख्य एजेंडा बना लिया है।

> जनसंघ के समय जो एजेंडा पेश किया जा रहा था, भाजपा भी वही कर रही। वह है अल्पसंख्यकों के प्रति उसकी सच्ची, असली और कभी न बदलने वाली नफरत

जिन मुद्दों की वजह से भाजपा आज भारत की सबसे बड़ी पार्टी बनी है, उन मुद्दों की सूची सालों तक वैसी ही बनी रही। पहला, मुसलमानों को अयोध्या में अपनी मस्जिद छोड़नी होगी; दूसरा, मुसलमानों को कश्मीर में अपनी संवैधानिक स्वायत्तता छोड़नी होगी; तीसरा, मुसलमानों को अपना पर्सनल लॉ छोड़ना होगा। ध्यान दें कि इस विचारधारा में हिन्दुओं के लिए कुछ भी नहीं है—मसलन, दलितों और आदिवासियों के लिए निजी क्षेत्र में आरक्षण। इसका पूरा जोर अल्पसंख्यकों पर है, और इसी से कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि यह पार्टी क्या है और यह किन सिद्धांतों पर खड़ी है।

जो कुछ यह हासिल करना चाहती थी, उसका ज्यादातर हिस्सा हासिल करने के बाद भी, यह उसी रास्ते पर बनी हुई है जैसा हमने देखा हैः मुसलमानों को अपना खान-पान छोड़ना होगा; उन्हें यह तय करने का अधिकार छोड़ना होगा कि वे किससे प्यार करें और किससे शादी करें; उन्हें यह तय करने का अधिकार छोड़ना होगा कि वे कहां रहें और कहां नमाज पढ़ें; क्या मुसलमान वोट दे सकते हैं; क्या वे शरण मांग सकते हैं, वगैरह-वगैरह। यह सिलसिला चलता ही रहेगा। इसका कोई अंत नहीं है और न कभी होगा, क्योंकि मकसद सिर्फ परेशान करना है और इसका एकमात्र अंतिम लक्ष्य सिर्फ दादागिरी करना है।

इस कट्टरता को ही 'दक्षिणपंथी' विचारधारा और राजनीति कहा जाता है, जो इस शब्द का ही अपमान है। राजनीति में आम तौर पर रूढ़िवाद का जो अर्थ समझा जाता है, उसकी एक लंबी और गौरवशाली परंपरा रही है। यह निरंतरता चाहता है। यह स्थिरता को महत्व देता है। उदाहरण के लिए, नोटबंदी करना एक आमूल-चूल बदलाव वाला विचार है, न कि कोई रूढ़िवादी विचार। हम आज संस्थाओं के साथ जो मनमानी छेड़छाड़, नए नामकरण, कांट-छांट और उन्हें खत्म करने का सिलसिला देख रहे हैं—इनमें से कोई भी काम रूढ़िवादी नहीं है। यहां जिसे 'दक्षिणपंथी' के रूप में पेश किया जा रहा है, वह असल में केवल एक गहरा पूर्वाग्रह है जिसने खुद को किसी और चीज की आड़ में छिपा रखा है।

इसी वजह से, पिछले कई दशकों में भाजपा के घोषणापत्रों में कई चीजों के साथ प्रयोग किए गए—कुछ को अपनाया गया, तो कुछ को छोड़ दिया गया। 1960 और 1970 के दशक में वे समाजवादी थे। वाजपेयी के नेतृत्व में पार्टी ने घोषणा की थी कि वह सभी भारतीयों की आय और घरों के आकार की एक सीमा तय कर देगी। इस विचार को बाद में छोड़ दिया गया। उसने यह भी मांग की थी कि कारखानों में मज़दूरों की जगह मशीनों का इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। इस मांग को भी छोड़ दिया गया। वह चाहती थी कि किसान ट्रैक्टरों के बजाय बैलों का इस्तेमाल करें। इस विचार को भी छोड़ दिया गया।

इनमें से किसी भी चीज को किसी स्पष्टीकरण के साथ न तो अपनाया गया और न ही छोड़ा गया, क्योंकि मतदाताओं को किसी स्पष्टीकरण की जरूरत ही नहीं थी। भाजपा/जनसंघ जो मुख्य चीज पेश कर रहा था, वह हमेशा सबके सामने थी—और वह थी अल्पसंख्यकों के प्रति उसकी सच्ची, असली और कभी न बदलने वाली नफरत। बाकी सब बेमानी था। जब तक वे सत्ता में आने पर इस वादे को पूरा करते रहे (और यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने ऐसा किया है), तब तक बाकी सब कुछ गौण रहा है।

इसीलिए हमारे पास केवल एक ही भाजपा है, और कोई उसे चुनौती देने वाला नहीं होगा। ■

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 1 September 2025

NATIONAL HERALD ON SUNDAY

संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1 Sept 2025)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition)	National Herald on Sunday (Mumbai)	Sunday Navjivan (National Edition)
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 10 Lakh	Rs 8 Lakh	Rs 10 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 6 Lakh	Rs 5 Lakh	Rs 6 Lakh
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 4 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 4 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 700	Rs 450	Rs 700

PAGE PREMIUM		Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
	Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
	page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
	Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices

Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000

< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW

@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of “Associated Journals Limited” and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 1 September 2025

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. “Reader” advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.

पश्चिम एशिया में जोखिम भरा एक और दांव

ओपेक से यूएई का बाहर निकलना पश्चिम एशिया ही नहीं, उसके बाहर भी तमाम मुसीबतें खड़ी कर सकता है

अशोक स्वैन

ओपेक और ओपेक+ से बाहर निकलने का यूएई का फैसला सिर्फ तेल से जुड़ा नहीं है। यह साफ तौर पर भू-राजनीतिक दरार को दिखाता है। अबू धाबी अब न तो सऊदी अरब के साथ अपनी अदावत को ढकने की कोशिश कर रहा, और न ही क्षेत्रीय गुटों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश कर रहा है। वह खुले तौर पर अमेरिका और इसराइल वाले नए खेमे का रुख कर रहा है, जिसकी ओर भारत भी बड़ी तेजी से झुक रहा है। यह बड़ा जोखिम भरा दांव है जो तनाव भरे इलाके में टकराव की लकीरों को और गहरा करने जा रहा है।

1960 में बना ओपेक, तेल उत्पादन में तालमेल बिठाने और तेल उत्पादक देशों को वैश्विक कीमतों पर सामूहिक नियंत्रण देने के लिए बनाया गया था। ओपेक+ 2016 में बना ताकि इसमें रूस जैसे बड़े उत्पादकों समेत 10 अन्य देशों को भी शामिल किया जा सके। दशकों तक, सऊदी अरब ने इन दोनों ही संगठनों पर अपना दबदबा बनाए रखा और इनका इस्तेमाल आर्थिक तथा भू-राजनीतिक प्रभाव के औजारों के तौर पर किया। यूएई के बाहर निकलने से सऊदी अरब का वह प्रभाव कुछ हद तक कम हो गया है, और यह इस बात का संकेत है कि अबू धाबी अब रियाद के नेतृत्व को स्वीकार नहीं करता और यह बात सिर्फ तेल क्षेत्र तक सीमित नहीं, बल्कि इसका दायरा पूरे क्षेत्रीय व्यवस्था तक फैला हुआ है।

इस संगठन को छोड़ने के पीछे का आर्थिक तर्क सीधा-सा है। यूएई, ओपेक के तय कोटे से ज्यादा तेल निकालना चाहता है, क्योंकि ईरान युद्ध की वजह से उसकी अर्थव्यवस्था पर काफी दबाव आ गया है। वह अपने तेल भंडारों को जल्द-से-जल्द पैसे में बदलना चाहता है, ताकि भविष्य में जब फॉसिल फ्यूल की मांग कम हो जाए, तो वह सुरक्षित रह सके। लेकिन यह तो बस ऊपरी बात है। इसके पीछे असल में सऊदी अरब के साथ एक गहरा रणनीतिक अलगाव छिपा है, जो ऊर्जा नीति, सैन्य गठबंधनों और वैश्विक साझेदारियों तक फैला है।

2020 के अब्राहम समझौते से एक अहम भू-राजनीतिक बदलाव संभव हुआ जिसके तहत यूएई ने इसराइल के साथ अपने रिश्तों को सामान्य बनाया और व्यापार, प्रौद्योगिकी तथा सुरक्षा के क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाया। इसके उलट, सऊदी अरब ने इस समझौते में शामिल होने से इनकार कर दिया। क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान ने साफ किया कि इसराइल से रिश्तों को सामान्य बनाना तभी संभव हो सकेगा, जब स्वतंत्र फिलिस्तीन की स्थापना हो जाए और व्यापक क्षेत्रीय हितों पर भी विचार किया जाए।

यूएई और सऊदी अरब का यह मतभेद लगातार बढ़ रहा है, और यह उनके खेमेबंदी में भी साफ दिखता है। जहां एक ओर सऊदी अरब एक औपचारिक रक्षा साझेदारी के जरिये पाकिस्तान से अपने रिश्तों को मजबूत कर रहा है, वहीं दूसरी ओर यूएई भारत के और करीब आ रहा है- वह रक्षा, खुफिया जानकारी, ऊर्जा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में सहयोग का विस्तार कर रहा है, और साथ ही इसराइल के साथ एक साझा रणनीतिक दायरे में अपनी स्थिति को और भी अधिक सुदृढ़ बना रहा है।

अमेरिका ने इस बदलाव को बढ़ावा दिया है। वॉशिंगटन लंबे समय से ओपेक को तेल की कीमतें घटाने और ऊर्जा बाजारों पर पश्चिमी देशों का प्रभाव बढ़ाने में रुकावट मानता रहा है। ओपेक छोड़ने से, यूएई इस कार्टेल की सप्लाई और कीमतों को कंट्रोल करने की सामूहिक क्षमता को कमजोर करता है, जिससे यूएई के तेल उत्पादन में बढ़ोतरी और बाजार में ज्यादा उतार-चढ़ाव की गुंजाइश बनती है और इसका फायदा अमेरिकी तेल उत्पादकों को मिल सकता है। अबू धाबी का यह कदम अमेरिका के बड़े रणनीतिक हितों के अनुरूप है: सऊदी के दबदबे वाले तेल गठजोड़ को कमजोर करना, ओपेक के प्रभाव को घटाना और यूएई को अमेरिका के नेतृत्व वाली भू-राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था से और भी गहराई से जोड़ना।

यूएई की भारत के साथ बढ़ती नजदीकी सिर्फ आर्थिक नहीं। यह राजनीतिक और रणनीतिक भी है और इसके गंभीर मायने हैं। अबू धाबी ने नई दिल्ली की उस सरकार से हाथ मिलाना चुना है, जिसकी घरेलू और क्षेत्रीय नीतियों ने मुस्लिम जगत में गहरी चिंता पैदा की है। साथ ही, भारत भी इसराइल के और करीब आ रहा है, और रक्षा सहयोग, खुफिया जानकारी साझा करने और तकनीकी साझेदारियों का विस्तार कर रहा है। यूएई-भारत संबंधों और भारत-इसराइल संबंधों में हितों का यह मेल महज इत्तेफाक नहीं, यह मौकापरस्त भू-राजनीतिक पुनर्गठन का हिस्सा है। इसमें जवाबदेही, न्याय या नियम-आधारित व्यवस्था जैसी बातों की परवाह किए बिना, सुरक्षा सहयोग और आर्थिक लाभ को प्राथमिकता दी जाती है।

पाकिस्तान के साथ यूएई के रिश्ते तेजी से बिगड़े हैं। अबू धाबी ने अपनी आर्थिक मदद कम कर दी है, कूटनीतिक बातचीत ठंडी कर दी है और निवेश के वादों से पीछे हट गया है। अप्रैल में पाकिस्तान से कहा गया कि वह यूएई का पूरा 3.5 अरब डॉलर का कर्ज चुका दे। इसलिए, यूएई और सऊदी अरब की अदावत जो कभी एक क्षेत्रीय खींच-तान थी, वह अब भारत और पाकिस्तान के आपसी रिश्तों में भी उलझ गई है, जिससे कई नई दरारें पैदा हो गई हैं। तनाव कम करने की कोशिशों के बजाय, यूएई गहरे ध्रुवीकृत भू-राजनीतिक समीकरण में एक पक्ष के साथ अपने रिश्तों को मजबूत करने में जुटा है।

यूएई की विदेश नीति इसी पैटर्न को और मजबूत करती है। यमन से लेकर लीबिया तक, इथोपिया और सूडान से लेकर हॉर्न ऑफ अफ्रीका तक, अबू धाबी ने रणनीतिक निवेश, सैन्य हस्तक्षेप और यहां तक कि प्रॉक्सी ताकतों के जरिये अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश की है। यमन में, उसने उन अलगाववादी गुटों का समर्थन किया, जिनकी सऊदी समर्थित ताकतों से झड़पें हुईं। सूडान में, वह उन अर्धसैनिक ताकतों का समर्थन करता है, जिन पर भयानक अत्याचारों के आरोप हैं। लीबिया में, उसने एक प्रतिद्वंद्वी ताकतवर नेता को हथियार और पैसा मुहैया कराया। उसने सोमालीलैंड के साथ भी रिश्ते बनाए। इन कदमों ने विभाजन को गहरा दिया है।

यूएई अपनी इन गतिविधियों को उग्रवाद और अराजकता के खिलाफ लड़ाई के तौर पर पेश करता है। लेकिन असलियत कहीं ज्यादा चिंताजनक है। गजा में इसराइल के भयानक नरसंहार के बावजूद, उसने इसराइल के साथ आर्थिक, तकनीकी और सैन्य सहयोग को बढ़ाना जारी रखा। दोनों का व्यापार बढ़ा है और रक्षा तथा खुफिया संबंध और गहरे हुए हैं। ईरान युद्ध ने अबू धाबी के इस विश्वास को और मजबूत किया है कि उसकी सुरक्षा इसराइल और अमेरिका के साथ है, न कि अरब संगठनों के साथ।

इस धुरी में भारत का शामिल होना समस्या को और बढ़ा देता है। पारंपरिक साझेदारों से दूरी बनाते हुए, नेतन्याहू के नेतृत्व वाले इसराइल और मोदी के नेतृत्व वाले भारत के साथ गठबंधन करके, यूएई पश्चिम और दक्षिण एशिया में विभाजन को और गहरा करने का जोखिम उठा रहा है। इससे उसकी अपनी विश्वसनीयता के भी घटने का खतरा है। एक ऐसा देश जो सहिष्णुता को बढ़ावा देने का दावा करता है, वह अपने गठबंधनों के परिणामों को अनिश्चित काल तक नजरअंदाज नहीं कर सकता।

सऊदी अरब भी कम दोषी नहीं। उसके अपने हस्तक्षेपों और महत्वाकांक्षाओं ने क्षेत्रीय अस्थिरता को बढ़ाने में योगदान दिया है। लेकिन यूएई की चुनौती कोई प्रगतिशील विकल्प नहीं है। यह सत्तावादी शक्ति प्रदर्शन का एक प्रतिस्पर्धी मॉडल है। इन दोनों के बीच की प्रतिद्वंद्विता विचारधारा से कम, और इस बात से ज्यादा जुड़ी है कि क्षेत्रीय राजनीति के अगले चरण पर किसका वर्चस्व होगा।

खतरा यह है कि यह प्रतिस्पर्धा- जो अब भारत-पाकिस्तान के समीकरणों से जुड़ गई है और बाहरी गठबंधनों से मजबूत हुई है- कई क्षेत्रों में अस्थिरता को और गहरा कर देगी। यमन, सूडान और लीबिया पहले ही इसकी कीमत चुका रहे हैं। दक्षिण एशिया भी खाड़ी देशों की प्रतिद्वंद्विता के लिए एक और अखाड़ा बन सकता है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

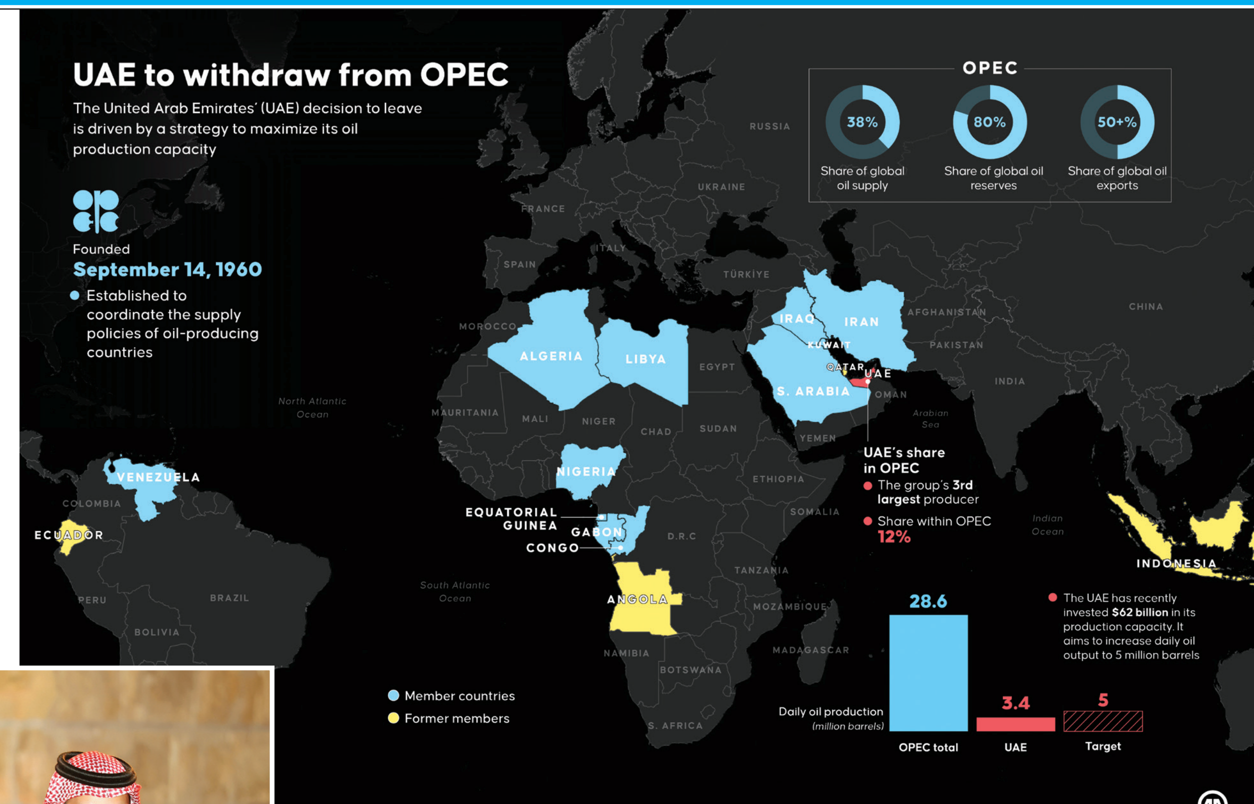

ओपेक का इन्फोग्राफिक स्नैपशॉट; वियना में सुनसान ओपेक मुख्यालय; सऊदी अरब के प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान अल सऊद

> नेतन्याहू के नेतृत्व वाले इसराइल और मोदी के नेतृत्व वाले भारत के साथ गठबंधन करके, यूएई पश्चिम और दक्षिण एशिया में विभाजन को और गहरा करने का जोखिम उठा रहा है। इससे उसकी अपनी विश्वसनीयता के भी घटने का खतरा है

लुटी-पिटी धमक के साथ शी से मिलेंगे ट्रंप

ईरान को जमीन सुंघाने में ट्रंप की नाकामयाबी का मतलब है कि वह अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में जा रहे हैं बीजिंग

आशीष रॉय

जब से अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने 14-15 मई की बीजिंग यात्रा के दौरान चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ शिखर सम्मेलन करने का विचार किया है, वैश्विक सत्ता संतुलन बदल गया है।

ईरान पर गैर-कानूनी, बिना किसी उकसावे के हमला करके उसे नेस्तनाबूद करना तो दूर, उसके हाथों मात खाने का मतलब है कि ट्रंप बीजिंग में अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में पहुंचेंगे। चीन इस स्थिति का पूरा फायदा उठाने की कोशिश करेगा, हालांकि ट्रंप शर्तिया ईरान मामले को कुछ अलग तरीके से पेश करेंगे।

चीन में यूरोपीय संघ चैंबर ऑफ कॉमर्स के पूर्व अध्यक्ष जोर्ग वुत्के ने मीडिया से बातचीत में कहा, 'अमेरिका बिना जीते लड़ रहा है, जबकि चीन बिना लड़े जीत रहा है।' 2017 में ट्रंप के बीजिंग दौरे का आयोजन करने वाले अमेरिकी राजनयिक विलियम क्लेन इससे असहमत हैं। हाल ही में पत्रकारों से बातचीत में उन्होंने कहा, 'दबाव की स्थिति में कोई बदलाव नहीं है; यह न तो बढ़ा है और न ही ईरान युद्ध की वजह से घटा है।' हालांकि, यह जरूर स्वीकार किया, 'जाहिर है, ईरान युद्ध का इस दौरे पर साया रहेगा और यह इस दौरे की दिशा तय करेगा'

फारस की खाड़ी क्षेत्र में ईरान, चीन का सबसे करीबी सहयोगी है। इसलिए, चीन के लिए अमेरिकी आक्रामकता न केवल उसके मित्र देश पर हमला थी, बल्कि चीन पर किया गया एक परोक्ष हमला भी। ईरान से तेल-गैस की सप्लाई, जो चीनी अर्थव्यवस्था के लिए बहुत जरूरी है, खाड़ी में अमेरिकी नौसेना की मौजूदगी और हाल ही में ईरानी जहाजों की आवाजाही पर लगाई गई रोक की वजह से बाधित हुई है। चीन के एक पूर्व राजनयिक, कुई होंगजियान ने कहा कि पश्चिम एशिया के संकट ने चीन की योजना छिन्न-भिन्न कर दी है।

सीएनएन ने चीन के एक जानकार सूत्र के हवाले से बताया कि ऐसा लगता है कि अमेरिका के 'ईरान से टकराव ने उसकी बातचीत की स्थिति को संभावित रूप से मजबूत किया है।' बीजिंग आगामी बैठक को वॉशिंगटन के साथ ज्यादा स्थिर और दीर्घकालिक रिश्ते बनाने के अनोखे मौके के तौर पर देख रहा है। सूत्र ने कहा, 'बेशक, ट्रंप ईरान का मामला निपटाने के बाद ही चीन जाना चाहेंगे, लेकिन अगर वह चीन जाने के बाद ईरान पर हमला करते हैं, तो ऐसा लगेगा जैसे चीन ने ईरान को छोड़ दिया है।' संयोगवश, वेनेज़ुएला के कच्चे तेल के निर्यात पर अमेरिका के मौजूदा नियंत्रण से चीन को काफी नुकसान हुआ है।

आधुनिक चीन अमेरिका की ही देन है। 1970 के दशक के शुरू में , अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन और उनके तेज-तर्रार राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार हेनरी किसिंजर ने, माओत्से तुंग के शासन में डूबती हुई चीनी अर्थव्यवस्था को न केवल बचाया, बल्कि आर्थिक उछाल लाने में भी अहम भूमिका निभाई और यह सब उन्होंने सोवियत संघ को नीचा दिखाने के लिए किया, जो तब वॉशिंगटन का मुख्य विरोधी था। इसका घोषित उद्देश्य कम्युनिस्ट दुनिया में मॉस्को और बीजिंग के बीच फूट डालना था, ताकि मॉस्को को कमजोर किया जा सके। नतीजतन, आज चीन न केवल एक आर्थिक महाशक्ति है, बल्कि एक सैन्य और तकनीकी महाशक्ति भी, जो अमेरिका के एक सदी से भी ज्यादा पुराने वर्चस्व को चुनौती दे रही है। शीर्ष स्तर की बातचीत के लिए माहौल अभी अनुकूल नहीं; इस बातचीत की मूल परिकल्पना दुनिया की दो सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के बीच आर्थिक संबंधों पर चर्चा करने और फिर से व्यवस्थित करने के लिए की गई थी। अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट द्वारा ट्रंप की शत्रुतापूर्ण टैरिफ नीति को रद्द किए जाने के बाद, ट्रंप के हाथ कुछ हद तक बंध गए हैं और चीन की स्थिति मजबूत हुई है।

पिछले महीने, अमेरिकी ट्रेजरी ने पांच चीनी रिफाइनरियों को ब्लैकलिस्ट कर दिया। चीनी सरकार ने इसपर ट्रंप के पिछले कार्यकारी आदेश को चीनी धरती पर लागू न होने योग्य घोषित कर दिया। फॉर्च्यून मैगजीन ने पिछले हफ्ते चीन के वाणिज्य मंत्रालय की उस घोषणा को 'अभूतपूर्व' बताया, जिसमें कहा गया था कि चीन अमेरिका के प्रतिबंधों को 'न तो मानेगा, 'न लागू करेगा' और 'न उनका पालन करेगा ।

ईरान के खिलाफ अमेरिका और इसराइल की कार्रवाई के जवाब में तेहरान ने भी अपनी रणनीति के तहत आस-पास के अरब देशों में मौजूद अमेरिकी सैन्य ठिकानों और ऊर्जा संयंत्रों पर हमला किया है, साथ ही होर्मुज जलडमरूमध्य को भी रोक दिया है। दुनिया भर में गैस-तेल की कीमतें आसमान छू रही हैं। शेयर बाजार धराशायी हो गए हैं। हर जगह चीजों की किल्लत हो रही है और महंगाई तेजी से बढ़ रही है।

चीन ने समझदारी दिखाते हुए अब तक पत्ते नहीं खोले हैं। लेकिन, वह उन दो ताकतों में है जो पर्दे के पीछे से ईरान की मदद कर रही हैं। हालांकि, ईरान के पास इन खतरों का जवाब देने के लिए ड्रोन और मिसाइलों की कोई कमी नहीं थी, लेकिन उसकी हवाई सुरक्षा काफी कमजोर थी। चीन इस कमी को दूर करने में जुट गया जो ट्रंप को नागवार गुजरा।

चीनियों ने ट्रंप की शेखी के पीछे छिपी कमजोरी को भांप लिया- जिसे, जैसा कि अमेरिकियों के बीच उनकी तेजी से गिरती लोकप्रियता से जाहिर होता है, कोई भी समझदार व्यक्ति गंभीरता से नहीं लेता। असल में, अमेरिका और चीन ईरान के युद्ध क्षेत्र में परोक्ष रूप से एक-दूसरे से लड़ रहे हैं।

हालांकि चीन ने ट्रंप की यात्रा से पहले सीधे तौर पर उनकी आलोचना करने से परहेज किया है, लेकिन उम्मीद है कि वह अपने विशाल घरेलू बाजार और दुर्लभ खनिज आपूर्ति श्रृंखला में अपने दबदबे का फायदा उठाएगा। चीनी सरकार की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा पूंजीवादी और अमेरिका-समर्थक ताइवान पर कब्जा करना है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद से अमेरिका ने ताइपे की सरकार को सुरक्षा की गारंटी दी है, जो वाशिंगटन और बीजिंग के बीच टकराव का सबब है। चीन चाहता है कि अमेरिका स्वतंत्र ताइवान के लिए अपना समर्थन बंद करे। हांगकांग से प्रकाशित 'साउथ चाइना मॉर्निंग पोस्ट' ने ट्रंप के उस बहुचर्चित दावे को छापा है, जिसमें उन्होंने कहा था कि चीन की उनकी यात्रा 'अमेजिंग' (अद्भुत) होने वाली है। अंग्रेजी में 'अमेजिंग' शब्द के कई अर्थ होते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति जो संदेश देना चाहते हैं, जरूरी नहीं कि वह आम लोगों की समझ से मेल खाता हो। बौद्धिक रूप से वह किसी ठोस बातचीत या समझौते के काबिल नहीं। 'फ्रेमवर्क' व्यवस्थाओं को चुनने की उनकी प्रवृत्ति इसका सबूत है। राष्ट्रपति के तौर पर अपने दूसरे कार्यकाल में बारीकियों पर ध्यान देने की उनकी क्षमता और घट गई है। अब वह 79 साल के भी हो चुके हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो, बीजिंग के साथ किया गया कोई भी समझौता अधूरा या बेमेल हो सकता है, और यहां तक कि भारत के लिए नुकसानदेह भी साबित हो सकता है। भारत के नजरिये से देखें तो, ट्रंप की यह योजना चिंताजनक है। भारत, अमेरिका का रणनीतिक 'साझेदार' है और नई दिल्ली आने से पहले उन्होंने चीन जाने का फैसला किया। इसने फिर साबित किया कि दुनिया को देखने का उनका नजरिया अपने पूर्ववर्तियों से अलग है। क्या पता, वह भारत के मुकाबले चीन को अमेरिकी हितों के लिए ज्यादा अहम मानते हों! चिंता की बात यह है कि चीन की दादागीरी वाली योजनाओं को रोकना शायद उनकी प्राथमिकता न हो।

चीन भारत की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा है। अमेरिका, जापान, भारत और ऑस्ट्रेलिया के गठजोड़ क्वाड का गठन चीन के विस्तारवाद को रोकने के लिए हुआ था। पश्चिम एशिया के मसले पर ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री एंथनी अल्बानीज और जापान की प्रधानमंत्री सनाए ताकाइची के राष्ट्रवादी नजरिये पर ट्रंप के रुख और नरेन्द्र मोदी को दी गई कम तवज्जो को ध्यान में रखते हुए बात करें तो उनके कार्यकाल में क्वाड के किसी बड़ी भूमिका निभाने पर संदेह है।

अमेरिका का विश्व युद्ध के बाद का सबसे करीबी गठबंधन यूरोप के साथ रहा है। क्रेमलिन के प्रति ट्रंप के नरम रवैये के कारण यह गठबंधन टूट रहा है। अमेरिकी सैनिकों के हटने से जर्मनी को नाटो से मिलने वाली सैन्य सुरक्षा कमजोर पड़ रही है। स्पेन और इटली, यहां तक कि ब्रिटेन में भी ऐसा ही हो सकता है। ये चारों देश, बाकी यूरोपीय महाद्वीप की तरह ही, ईरान के खिलाफ ट्रंप के युद्ध का खुलकर विरोध कर चुके हैं।

ऐसे ही, जापान के प्रति अमेरिका की प्रतिबद्धता, जहां अमेरिका के बाहर किसी भी जगह के मुकाबले सबसे ज्यादा अमेरिकी सैनिक तैनात हैं, को ट्रंप के शासन में गंभीरता से नहीं लिया जा सकता। दक्षिण कोरिया और वॉशिंगटन के अन्य एशियाई सहयोगियों के मामले में भी यही बात लागू होती है। जहां तक नरेन्द्र मोदी की बात है, अमेरिका की ओर उनके झुकाव, ट्रंप के साथ गर्मजोशी से गले मिलने जैसी भंगिमाओं का अगर कुछ असर हुआ है, तो वह मोदी पर ही भारी पड़ा है। ■

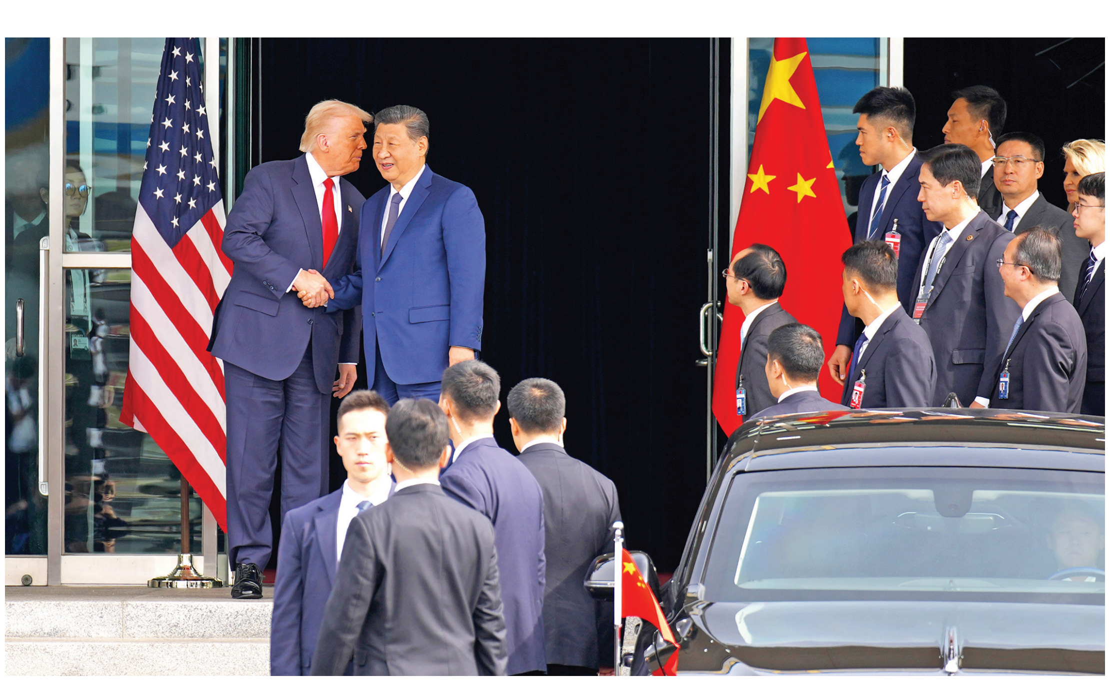

दक्षिण कोरिया में एक बैठक के दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग

> ट्रंप ने पहले चीन जाने का फैसला किया। इसने साबित किया कि दुनिया को देखने का उनका नजरिया अपने पूर्ववर्तियों से अलग है। चिंता की बात यह है कि चीन की दादागीरी वाली योजनाओं को रोकना शायद उनकी प्राथमिकता न हो

पहले स्वतंत्रता संग्राम का वह क्रांतिकारी आग़ाज़

बूढ़े भारत में जब आई फिर से नई जवानी थी। यह बगावत स्वतंत्रता संग्राम में बदलकर देश के बड़े हिस्से में फैल गई थी

कृष्ण प्रताप सिंह

दस मई 1857। यही वह तारीख थी, जब हमने गोरी ईस्ट इंडिया कंपनी की गुलामी के विरुद्ध अपने पहले स्वतंत्रता संग्राम का आगाज कर उसके आकाओं के होश फाख्ता कर दिए थे। इसकी शुरुआत मेरठ छावनी में कंपनी के देसी सैनिकों ने की थी। वे महसूस करने लगे थे कि कंपनी के बहुविध शोषण ने सारे देशवासियों का सुख-चैन हराम कर दिया है।

उस दस मई को रविवार था। छुट्टी का दिन। अंग्रेज अधिकारी छुट्टी के मूड में थे। तभी देसी सैनिकों ने मेरठ की जेल पर हमला कर दिया और वहां बंद अपने 85 साथियों को छुड़ा लिया। इन 85 साथियों ने कुछ दिन पहले गाय और सुअर की चर्बी वाले नए कारतूस (बंदूक में भरने से पहले जिनका खोल दांतों से उतारना पड़ता था) इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया था। इसके बाद उन्हें जेल भेज दिया गया था।

इसके बाद जो भी फौजी या गैर फौजी अंग्रेज सामने आया, बागी सैनिकों ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया। सारे बंगलों को आग के हवाले कर दिया, जिनमें अंग्रेज अफसर रहते थे। अगले दिन अपनी जीत का परचम लहराते हुए राजधानी दिल्ली जा पहुंचे। वहां उन्होंने अंग्रेजों द्वारा जबरन अपदस्थ कर दिए गए आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को फिर से गद्दीनशीन कर बादशाह घोषित कर दिया। उनसे कहा, 'आप हुक्म भर दे दें हमें, हम ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा लूटा गया आपका सारा खजाना लाकर फिर आपके कदमों में डाल देंगे।'

हिन्दी की प्रतिष्ठित कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के शब्दों में कहें तो इसके बाद बूढ़े भारत में फिर से नई जवानी आ गई थी और यह बगावत स्वतंत्रता संग्राम में बदलकर देश के बड़े हिस्से में फैल गई थी।

सब के सब लड़े

यह सब एक-दो दिन में ही संभव नहीं हो गया था। आजादी के दीवाने ईस्ट इंडिया कंपनी की सेनाओं को अगले दो वर्षों तक पश्चिम में पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान से लेकर पूर्व में अरुणाचल और मणिपुर और उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल और कर्नाटक तक छकाते रहे थे। मैदानी इलाकों में अन्य लोग अपनी-अपनी तरह से अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था।

बीस दिन बाद 30 मई को लपटें अवध की राजधानी लखनऊ पहुंचीं। बागियों ने वहां ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता रेजीडेंसी तक सीमित कर दी। अंग्रेजों को उसी में कैद कर दिया और अपदस्थ एवं निर्वासित नवाब वाजिद अली शाह के अवयस्क बेटे बिरजिस कद्र को नवाब बनाकर गद्दीनशीन कर दिया। इतिहासकार, पत्रकार व स्वतंत्रता सेनानी पंडित सुंदरलाल ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में लिखा है कि इस स्वतंत्रता संग्राम की जितनी अच्छी तैयारी अवध में की गई, देश में और कहीं नहीं की गई थी। इन तैयारियों की ही बदौलत बिरजिस की संरक्षक बनीं उनकी मां बेगम हजरतमहल अवध को फिर से हथियाने की ताक में लगी कंपनी की सेनाओं को दिल्ली के उनके फिर से कब्जे में आ जाने के कई महीनों बाद तक मजा चखाती रहीं।

अयोध्या में साधु-फकीर

अब अयोध्या और उसके आस-पास के स्वतंत्रता संग्राम का हाल। 1858 की सर्दियां आते-आते अंग्रेजों ने अवध के ज्यादातर हिस्सों पर फिर से नियंत्रण स्थापित कर लिया था, लेकिन अयोध्या के सरयूपार के पड़ोसी गोंडा जिले में संग्राम की आग अभी भी धू-धू करके जल रही थी। वहां के महाराजा देवीबख्श सिंह की हिन्दू-मुस्लिम एकता की शक्ति से मंडित विशाल सेना जांबाजी में अपना सानी नहीं रखती थी और अंग्रेजों के किसी भी हमले को नाकाम कर डालती थी।

घाघरा और सरयू नदियों के संगम पर स्थित तुलसीपुर के मांझा में एक भिड़ंत में इस सेना ने अपने दुस्साहसों के लिए प्रसिद्ध अंग्रेज जनरल होपग्रांट तक को अपना-सा मुंह लेकर वापस लौट जाने को विवश कर दिया, तो उसने खीझकर ब्रिगेडियर रोक्राफ्ट के साथ गोंडा पर दुतरफा हमले की योजना बनाई। इसके तहत रोक्राफ्ट तो जल्दी ही घाघरा पारकर टेढ़ी नदी के उत्तरी तट पर स्थित लमती-लोलपुर के ऐतिहासिक मैदान में जा पहुंचा, लेकिन बेहद कड़े प्रतिरोध ने अयोध्या की ओर से होपग्रांट का सरयू पार करना दूभर कर दिया। होपग्रांट ने देखा कि सैन्यबल से काम नहीं चल रहा तो छल-छद्म से अयोध्या के राजा मान सिंह को अपनी ओर मिला लिया।

जून 1857 में बागियों ने अयोध्या को अंग्रेजों से मुक्त कराया तो उसका प्रबंध इन्हीं मान सिंह को सौंपा था। तब मान सिंह बेगम हजरतमहल के सिपहसालारों में से एक थे और गोंडा की सेना को अभी भी उनसे वफा की उम्मीद थी। लेकिन उन्होंने विश्वासघात करके होपग्रांट के ज्यादातर सैनिकों को सरयू के विभिन्न घाटों से साधुओं-फकीरों और दूधियों के वेश में उस पार उतरवा दिया।

इस निर्देश के साथ कि वे मुकाबले के वक्त तक अपने अस्त्र-शस्त्र छिपाए रखें। मान सिंह जानते थे कि उन घाटों पर साधुओं-फकीरों और दूधियों की आवाजाही इतनी आम है कि उनकी संख्या थोड़ी ज्यादा हो जाने पर भी कोई संदेह नहीं करेगा। गोंडा की सेना तो उन पर इसलिए भी गोलियां चलाने से रही कि वे उसके लिए अंग्रेजों की सैन्य गतिविधियों के महत्वपूर्ण सूचना-स्रोत थे।

यह पेंटिंग याद दिलाती है कि मेरठ छावनी में ईस्ट इंडिया कंपनी के सैनिकों के विद्रोह ने अंग्रेजों की चूलें हिला दी थीं

> आजादी के दीवाने ईस्ट इंडिया कंपनी की सेनाओं को अगले दो वर्षों तक पश्चिम में पंजाब, अरुणाचल और मणिपुर और उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल और कर्नाटक तक छकाते रहे थे

खैर, लमती-लोलपुर में घमासान आरंभ हुआ तो गोंडा के सैनिकों को एकबारगी समझ में ही नहीं आया कि ये साधु-फकीर और दूधिये अचानक उनपर आक्रामक क्यों हो उठे हैं? जब तक वे माजरा समझ पाते, घिरकर रह गए। उनके एक ओर रोक्राफ्ट था, दूसरी ओर होपग्रांट और तीसरी ओर मान सिंह। इसके बावजूद वे उन्हें हफ्ते भर छकाते रहे। भले ही उनके प्रतिद्वंद्वियों के पास कहीं ज्यादा उन्नत अस्त्र-शस्त्र और साजोसामान थे।

मान सिंह का विश्वासघात इस हद तक पहुंच गया कि गोंडा के तोपचियों को बारूद की जगह बालू भरे गोले पहुंचा दिए गए, जो वक्त पर दगे ही नहीं, तो भी इस सैनिकों ने हार नहीं मानी और लाठियों, भालों, बर्छियों और तलवारों आदि पारंपरिक हथियारों से युद्ध जारी रखा। गोलों के अभाव में भी तोपचियों काले खां, हुसैन खां और मशीयत खां ने मैदान छोड़ना गवारा नहीं किया और आमने-सामने दो-दो हाथ करते शहीद हो गए। यह तब था, जब शाम को युद्ध थमने पर सेवक और चोबदार लाशें उठाते-उठाते थक जाते।

हफ्ते भर की अनिर्णीत भिड़ंतों के बाद छह दिसंबर 1858 की सुबह गिनती हुई तो 21 हजार में सिर्फ आठ सौ सैनिक बचे थे। लाचार सेनापति ने उन्हें मैदान छोड़ने का आदेश दिया तो अंग्रेजों ने महाराजा देवीबख्श को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने में अपनी पूरी शक्ति झोंक दी। उन आठ सौ ने जान की बाजी लगाकर महाराजा को बचाया और उन्हें बनकसिया के किले में ले गए तो अंग्रेज वहां भी जा धमके।

इतिहासकार कहते हैं कि वहां उनमें आधे यानी चार सौ ने अपनी लाशें बिछा दीं, लेकिन महाराजा को खरोंच नहीं लगने दी। महाराजा ने भी उनके बलिदान की लाज रखी। सब कुछ गंवा देने के बावजूद आत्मसमर्पण कर क्षमादान पाने का महारानी विक्टोरिया का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। अंततः शिवालिक की पहाड़ियों में मलेरिया ने उनसे आखिरी सांस भी छीन ली। उन दिनों जिस घाट से सर्वाधिक अंग्रेज सैनिक सरयू पार गए थे, लोग उसे अभी भी घृणापूर्वक 'चोरघटवा' यानी चोरों का घाट कहते हैं। ■

समय-समाज के बीच सक्रिय संवाद जैसी उपस्थिति

परिकथा का ताजा अंक ऐसे दौर मेंआया है, जब साहित्य के सामने केवल सौंदर्य-बोध का प्रश्न नहीं, सामाजिक उत्तरदायित्व का भी गंभीर आग्रह है

शैलेन्द्र चौहान

परिकथा का यह अंक अपने प्रथम दृश्य में ही स्पष्ट कर देता है कि यह पत्रिका केवल साहित्यिक रचनाओं का संकलन भर नहीं, बल्कि समय और समाज के बीच एक सक्रिय संवाद की तरह उपस्थित है। "समय और समाज की परिक्रमा" जैसी पंक्ति यहां किसी औपचारिक उद्घोषणा के रूप में नहीं, बल्कि पूरे अंक की आत्मा के रूप में काम करती है। अप्रैल-जून 2026 का यह अंक एक ऐसे दौर में आया है, जब साहित्य के सामने केवल सौंदर्य-बोध का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व का भी गंभीर आग्रह है। इस दृष्टि से यह अंक अपने वैचारिक और रचनात्मक संतुलन के कारण उल्लेखनीय बन पड़ता है।

इस अंक की संरचना पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि संपादकीय दृष्टि ने विविधता को प्राथमिकता दी है, लेकिन यह विविधता बिखराव नहीं रचती, बल्कि एक अंतर्धारा में जुड़ती हुई दिखाई देती है। आलोचनात्मक टिप्पणियों से लेकर जनपक्षीय लेखों, साक्षात्कारों, कहानियों और कविताओं तक—हर विधा अपने-अपने स्तर पर समकालीन यथार्थ को स्पर्श करती है। यह स्पर्श सतही नहीं, बल्कि भीतर तक उतरकर उसे समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास है।

आलोचनात्मक टिप्पणियों का खंड विशेष रूप से ध्यान खींचता है। "वर्तमान परिदृश्य का एक सशक्त और प्रतिनिधि दस्तावेज" जैसी टिप्पणियां केवल प्रशंसा नहीं, बल्कि इस बात की ओर संकेत हैं कि पत्रिका अपने समय को दर्ज करने की जिम्मेदारी निभा रही है। "हिन्दी और उर्दू के रिश्तों पर एक नजर" जैसी सामग्री उस सांस्कृतिक संवाद का पुनर्स्मरण कराती है, जो आज के विभाजित विमर्शों में अक्सर उपेक्षित हो जाता है। यहां साहित्य केवल भाषा का प्रश्न नहीं, बल्कि साझा विरासत और संवेदनशीलता का सेतु बनकर उभरता है।

"जन्मशती विशेष" खंड में नामवर सिंह पर केन्द्रित सामग्री इस अंक को एक विशिष्ट बौद्धिक आयाम प्रदान करती है। नामवर सिंह की विचार-यात्रा पर लेख और उनकी आलोचना-पद्धति के मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है कि पत्रिका परंपरा के साथ संवाद बनाए रखते हुए वर्तमान को समझने का प्रयास कर रही है। यह स्मरण और पुनर्पाठ का कार्य किसी श्रद्धांजलि भर नहीं है, बल्कि आलोचनात्मक चेतना को पुनर्सक्रिय करने का उपक्रम है। इससे पाठक को यह समझने का अवसर मिलता है कि साहित्यिक विमर्श किस तरह समय के साथ विकसित होता है और उसकी प्रासंगिकता किस तरह बनी रहती है।

समकालीन यथार्थ का स्पर्श

इस अंक की संरचना पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि संपादकीय दृष्टि ने विविधता को प्राथमिकता दी है, लेकिन यह विविधता का बिखराव नहीं रचती, बल्कि एक अंतर्धारा में जुड़ती हुई दिखाई देती है। हर विधा अपने-अपने स्तर पर समकालीन यथार्थ को स्पर्श करती है। यह स्पर्श सतही नहीं, बल्कि भीतर तक उतरकर उसे समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास है

> परिकथा केवल कथाओं का संसार नहीं रचती, समय, समाज और मनुष्य के बीच एक जीवंत परिक्रमा करती है। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है और यही बात इसे समकालीन हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है

परिदृश्य खंड में उपन्यासकारों से बातचीत इस अंक की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि है। संजीव, गरिमा श्रीवास्तव और योगिता यादव जैसे रचनाकारों के साथ संवाद साहित्य के सृजन-प्रक्रिया को समझने का अवसर देता है। बातचीत केवल औपचारिक प्रश्नोत्तर नहीं हैं, बल्कि रचना के पीछे काम कर रही वैचारिक और सामाजिक चेतना को उजागर करती हैं। इससे पाठक को यह महसूस होता है कि साहित्य कोई एकांत साधना नहीं, बल्कि अपने समय के साथ एक सतत संवाद है।

"आदिवासी आंदोलन, हिन्दी साहित्य और इतिहास की समस्याएं" जैसा लेख इस अंक की वैचारिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है। यह विषय न केवल समकालीन है, बल्कि अत्यंत जरूरी भी है। इस तरह के लेख यह दिखाते हैं कि 'परिकथा' उन आवाजों को जगह देने का प्रयास कर रही है, जो मुख्यधारा के विमर्श में अक्सर हाशिये पर चली जाती हैं। यहां साहित्य एक प्रकार से प्रतिरोध का माध्यम बनता है, जो केवल यथार्थ को दर्ज नहीं करता, बल्कि उसे प्रश्नांकित भी करता है।

कहानी खंड इस अंक की रचनात्मक ऊर्जा का केन्द्र है। विभिन्न लेखकों की कहानियां अपने कथ्य और शिल्प में विविध होते हुए भी एक साझा सामाजिक संवेदना से जुड़ी हुई हैं। "बाबा नूर" से लेकर "पानी का टैंकर" और "चित्रहार" जैसी कहानियां अपने-अपने तरीके से बदलते समाज की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों में जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से बड़े सामाजिक प्रश्न उठाए गए हैं। यह विशेषता इस अंक को सामान्य कहानी-संकलनों से अलग बनाती है।

कविता खंड में भी एक सशक्त उपस्थिति दिखाई देती है। "सबसे खूबसूरत आदमी", खाड़ी युद्ध पर सशक्त कविताएं या "मजदूर बस्ती से उठती खुशबू" जैसी कविताएं अपने शीर्षकों से ही एक वैचारिक दिशा की ओर संकेत करती हैं। मेरी भी कुछ कविताएं अमेरिकी-इसराइली आक्रमणकारी मानसिकता पर शामिल हैं। यहां कविता केवल भावुकता का विस्तार नहीं, बल्कि एक सजग सामाजिक हस्तक्षेप के रूप में सामने आती है। इन कविताओं में जीवन के यथार्थ, संघर्ष और आशा के विविध रंग दिखाई देते हैं। भाषा सरल होते हुए भी प्रभावशाली है, और बिंब ऐसे हैं जो पाठक के भीतर देर तक गूंजते रहते हैं।

इस अंक की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी संपादकीय सजगता है। दक्षिणी ईरान के मिनाब में लड़कियों का एक प्राइमरी स्कूल इस मिसाइल हमले में ध्वस्त हो गया, जिसमें लगभग 170 से अधिक लोगों की मौत हुई है और अनेक घायल हुए हैं, इनमें अधिकांश छात्राएं हैं। यह संपादकीय संवेदनशीलता है। संपादक और संपादक मंडल ने जिस तरह से सामग्री का चयन और संयोजन किया है, वह यह दर्शाता है कि पत्रिका किसी पूर्वाग्रहयुक्त विचार या दृष्टिकोण तक सीमित नहीं है जैसाकि अमूमन आज साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक हैं। यहां बहस की गुंजाइश है, विविध मतों के लिए स्थान है, और सबसे महत्वपूर्ण—एक लोकतांत्रिक साहित्यिक वातावरण की उपस्थिति है। यह गुण आज के समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जब साहित्यिक मंचों पर एकरूपता का दबाव बढ़ता जा रहा है।

साथ ही, पत्रिका का यह निर्णय कि अब यह केवल सदस्यों तक सीमित न रहकर व्यापक पाठक समुदाय तक पहुंचेगी, एक सकारात्मक कदम है। इससे न केवल इसका प्रभाव क्षेत्र बढ़ेगा, बल्कि नए पाठकों और लेखकों के साथ संवाद की संभावनाएं भी खुलेंगी। यह विस्तार केवल वितरण का नहीं, बल्कि विचारों के प्रसार का भी है।

कुल मिलाकर, 'परिकथा' का यह अंक अपने समय की जटिलताओं को समझने और उन्हें साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का एक गंभीर प्रयास है। इसमें न तो अनावश्यक शोर है और न ही आत्ममुग्धता; बल्कि एक संतुलित, विचारशील और प्रतिबद्ध दृष्टि है। यह अंक पाठक को केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि सोचने और संवाद करने के लिए आमंत्रित करता है।

> यह अंक अपने समय की जटिलताओं को समझने और उन्हें साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का एक गंभीर प्रयास है। इसमें न तो अनावश्यक शोर है और न ही आत्ममुग्धता, बल्कि एक संतुलित, विचारशील और प्रतिबद्ध दृष्टि है

इस तरह परिकथा अपने नाम को सार्थक करती हुई दिखाई देती है—यह केवल कथाओं का संसार नहीं रचती, बल्कि समय, समाज और मनुष्य के बीच एक जीवंत परिक्रमा करती है। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है और यही बात इसे समकालीन हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। ■

Published Date 10 May, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

टाइगर रिजर्व के नाम पर आदिवासियों की बलि

भारतीय बाघ और अफ्रीका से लाए गए चीते संरक्षण के प्रतीक तो बन गए, लेकिन इनके लिए बने टाइगर रिजर्व की कीमत आदिवासियों को चुकानी पड़ी है

प्रीति डेविड

मुन्नालाल कुर्मी कहते हैं, "हम कहीं जाने को तैयार नहीं हैं। कहां जाएंगे? हमें बेघरों की तरह भटकना पड़ेगा।" वह मध्य प्रदेश के दमोह जिले में सरसेला रायत के एक किसान हैं। यह उन 93 गांवों में एक है जो दमोह में भारत के 54वें टाइगर रिजर्व यानी वीरांगना दुर्गावती टाइगर रिजर्व (वीडीटीआर) के कारण बर्बाद होने के कगार पर है।

यह रिजर्व उन 58 अभ्यारण्यों में से है, जिन्हें बाघों के आवास के लिए समर्पित किया गया है; इनमें से दो में चीते भी साथ रहेंगे। यह रिजर्व ऐसे क्षेत्र हैं जो सिर्फ वन्यजीवों के लिए संरक्षित हैं और इंसानी दखल से पूरी तरह दूर।

ये टाइगर रिजजर्व वर्तमान में लगभग 80,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र (भारतीय वन क्षेत्र का करीब 10 प्रतिशत हिस्सा) में फैले हुए हैं, जिन्हें 257 गांवों को विस्थापित करके बनाया गया है। केन्द्रीय जनजातीय कार्य राज्यमंत्री दुर्गादास उइके ने दिसंबर 2025 में लोकसभा को यह जानकारी दी। इतना ही नहीं, रिजर्व के भीतर आने वाले 730 गांव भी अब विस्थापित होने को हैं।

डबा, नौरादेही अभ्यारण्य की सीमा पर बसा दमोह का एक और गांव है जो इस नए टाइगर रिजर्व की भेंट चढ़ जाएगा। यहां रहने वाली राधा रानी गोंड हमसे पूछती हैं, "हम कहां रहेंगे? क्या खाएंगे?"

'किलाबंदी संरक्षण' इस रिजर्व को तैयार करने के पीछे का तर्क है, जिसमें वन्यजीवों के लिए ऐसे संरक्षित क्षेत्र बनाए जाते हैं जो आम लोगों की पहुंच से बाहर होते हैं। पारिस्थितिकीविद बताते हैं कि यह सोच एक बेहद सरलीकृत धारणा पर आधारित है कि बाघ और इंसान का सह-अस्तित्व संभव नहीं है। हकीकत यह है कि भारत के वन्य क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी समुदाय हमेशा से जंगली जानवरों के नजदीक रहकर जीवन बिताते आए हैं। जनका बाई कहती हैं, "जंगल और जानवरों की देखभाल हम ही करते हैं। वे हमें यहां से निकाल रहे हैं और यहां पर्यटकों के लिए गेस्ट हाउस बनाएंगे।" 2015 में जब पन्ना टाइगर रिजर्व क्षेत्र को विस्तार दिया गया, तो उनका गांव इस योजना की भेंट चढ़ गया था।

विस्थापित होने वाले समुदायों में ज्यादातर सबसे गरीब आदिवासी, दलित और अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लोग होते हैं, जो इस विस्थापन से अपने घर और जमीन से जुड़ाव खो देते हैं। जंगल पर निर्भर उनकी आजीविका अचानक छिन जाती है, सामाजिक रिश्ते बिखर जाते हैं और राजनीति में उनकी आवाज उठाने वाला कोई नहीं होता।

वीरांगना दुर्गावती टाइगर रिजर्व के मुख्य क्षेत्र का विस्तार करके वहां बाघों के साथ-साथ चीतों को भी बसाने की योजना है। ऐसा हुआ तो मुन्नालाल की छह एकड़ जमीन, उनके कुएं, बैल और घर, सब कुछ उनसे छिन जाएगा। 50 वर्षीय मुन्नालाल 15 लाख रुपये का मुआवजे लेकर गुस्से में हैं, कि- "15 लाख में क्या होगा। इसलिए हम कहीं नहीं जाएंगे। एक करोड़ भी दे दें तो कम पड़ेगा।"

सरसेला के एक निवासी (नौकरी के लिए नाम न जाहिर करने की शर्त पर) कहते हैं, "यहां किसी भी गांव में सिंचाई की सुविधा वाली अच्छी खेतिहर जमीन 10 से 15 लाख रुपये प्रति एकड़ से कम में नहीं मिलेगी। यहां तक कि खराब जमीन भी पांच लाख रुपये प्रति एकड़ है।"

स्पष्ट है कि नेशनल टाइगर कंजर्वेशन अथॉरिटी (एनटीसीए) का प्रति वयस्क 15 लाख रुपये का पुनर्वास पैकेज उतना भरपूर मुआवजा नहीं है, जितना बताया जाता है।

हमीर यादव और उनके चारों भाई अपने परिवारों के साथ अब अभ्यारण्य के भीतर बसे पटनामोहली टोले से बाहर जाकर बसने की फिराक में हैं। उनका कहना है कि वहां स्वास्थ्य सेवाएं और स्कूल जैसी बुनियादी सुविधाएं बहुत सीमित थीं। पांचों परिवारों ने मिलकर पैसा जोड़ा, इसलिए वे जमीन और घर दोनों में थोड़ा बेहतर सौदा कर पाए और कुछ बैंक की भी बचत थी। जिन परिवारों में ज्यादा वयस्क सदस्य होते हैं, वही कुछ हद तक बेहतर स्थिति में आ पाते हैं।

पूरे देश में करीब 27.5 करोड़ लोग अपनी आजीविका के लिए जंगलों पर निर्भर हैं, और इसके बावजूद वे गरीबी से बाहर नहीं निकल पाते। बेदखली के बाद वे रातोंरात या तो छोटे-मोटे किसान बनकर रह जाते हैं या फिर ज्यादातर सस्ते मजदूर बन जाते हैं। जनका बाई अपने विस्थापन के अनुभव को इस तरह बयान करती हैं, "ईंट दिखा कर पत्थर मारते हैं ये लोग।"

*

भारत के जंगलों में जहां एक ओर आदिवासियों का बसाव है, वहीं इन्हीं क्षेत्रों में देश की सारी खनिज संपदा मौजूद है। जिस पर कब्जा करने का तरीका है कि देश राष्ट्रीय सुरक्षा, बुनियादी ढांचा, विकास और नवीकरणीय ऊर्जा जैसे मुद्दों का सहारा ले। लेकिन इन सभी मुद्दों के पीछे असली दांव भूमि, और बॉक्साइट, मैंगनीज, लौह अयस्क जैसी खनिज संपदाओं पर लगाया गया है।

इन इलाकों पर अधिकार जताने का एक रास्ता है, जहां बाघों को राष्ट्रीय गौरव बता दिया जाता है, लेकिन विडंबना यह है कि इन्हीं इलाकों में कई बड़ी परियोजनाओं की भी मंजूरी दे दी गई है। 60 किलोमीटर वर्ग क्षेत्र में फैला पन्ना टाइगर रिजर्व का मुख्य क्षेत्र नदी जोड़ो परियोजनाओं की खातिर जलमग्न कर दिया जाएगा। शाहबाद का एक महत्वपूर्ण वन्यजीव गलियारा पंप्ड स्टोरेज रिजर्वायर में बदला जाएगा; और सरिस्का रिजर्व में खनन की मंजूरी देने के लिए बफर जोन के दायरे को घटा दिया गया है।

मध्य प्रदेश में बाघों के लिए सबसे ज्यादा, कुल नौ टाइगर रिजर्व हैं। जिन गांवों को यहां विस्थापित किया जाना है, वहां के लोग लघु वन उपज पर गंभीर रूप से निर्भर हैं। मध्य प्रदेश के कम-से-कम एक-तिहाई आदिवासी भूमिहीन हैं। नीति आयोग की रिपोर्ट भी बताती है कि मध्य प्रदेश में हर पांच में से एक व्यक्ति भीषण गरीबी में जीवनयापन कर रहा है।

पास की बोरिया पंचायत में घासी राम आदिवासी गांव छोड़ना नहीं चाहते, क्योंकि जंगल तक उनकी पहुंच खत्म हो जाएगी, जो उनकी मुख्य आय का स्रोत है।

डबा में, जो दमोह का एक आदिवासी टोला है, आज तक बिजली नहीं पहुंची है। इसलिए उम्र बढ़ने के बावजूद लक्ष्मी रानी गोंड कहती हैं कि वह अब विस्थापित होना स्वीकार करेंगी, ताकि उनके बच्चों और पोते-पोतियों को बुनियादी सुविधाएं तो मिल सकें।

सभी फोटो: प्रीति डेविड

वीरांगना दुर्गावती टाइगर रिज़र्व का यह 'सुस्वागतम् बोर्ड' यहां के बाशिंदों को डराता है। इसने कितनों को बर्बाद कर दिया और कितने ही बर्बादी के कगार पर हैं

*

वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 और प्रोजेक्ट टाइगर (2006) से पहले, जंगलों को मुख्य रूप से लकड़ी से होने वाली आय के स्रोत के रूप में देखा जाता था। पर्यावरण इतिहासकार प्रोफेसर महेश रंगराजन कहते हैं, "वन विभाग का मुख्य काम बायोमास, लघु वन उपज और अन्य वनोपज पर नियंत्रण रखना, लकड़ी काटना, काम के लिए मजदूरों का इस्तेमाल करना और खेती को नियंत्रित करना था। वन अधिकार कानून (2006) ने इस ऊपर से थोपी जाने वाली ऐतिहासिक नीतियों के ढांचे को सुधारने की कोशिश की, लेकिन एनटीसीए के आने के बाद हालात बदल गए। इसने क्रिटिकल टाइगर हैबिटैट (सीटीएच) बनाए, जहां एफआरए का कोई असर नहीं रहा। इससे एफआरए के तहत अधिकार हासिल करना बहुत मुश्किल हो गया।"

भारत के जंगलों में एनटीसीए के पास काफी अधिकार हैं। इसे 2006 में पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की एक केन्द्रीय योजना के रूप में बनाया गया था। अपने पहले ही साल में इसने बाघों के लिए 25 नए रिजर्व जोड़ दिए। जहां लोग सदियों से रहते आए थे, वे बफर जोन अचानक मुख्य क्षेत्र में बदल दिए गए, जिससे लोगों की आजीविका खत्म हुई और उन्हें विस्थापन झेलना पड़ा।

रघुलाल जाटव जैसे भारत के वनवासी यह सवाल पूछते हैं, "हमें जंगल से क्यों निकाला गया?" मध्य प्रदेश के कूनो के जंगलों में पले-बढ़े दलित रघुलाल यह इसलिए पूछते हैं क्योंकि 1999 में उन्हें और उनके परिवार सहित करीब 16,000 लोगों को शेरों के लिए वहां से हटाया गया था, जो कभी आए ही नहीं। दो दशक से ज्यादा समय बाद वहां चीते जरूर लाए गए।

इस विस्थापन ने उन्हें गहरे संकट में डाल दिया और 27 साल बाद भी, ज्यादातर सहरिया आदिवासी और दलित समुदाय किसी तरह गुजारा कर रहे हैं। मुआवजे की रकम पर्याप्त नहीं थी और खेती की जमीन एवं बुनियादी सुविधाओं के वादे पूरे नहीं हुए हैं।

लेकिन पार्क और जानवरों की स्थिति बेहतर रहती है। एक रिजर्व को बड़ा बजट मिलता है और राज्य के वन विभागों को इसका फायदा होता है। एनटीसीए के 2025-2026 के बजट में कर्मचारियों के वेतन बढ़ाने, उनके लिए बेहतर विधाएं देने, पुनर्वास पैकेज और अन्य मदों के लिए 153 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। संरक्षण के बजट में सबसे बड़ा हिस्सा बाघों को मिलता है, जिसे लेकर जीवविज्ञानी प्रोफेसर रमन सुकुमार का कहना है, " इसलिए वन्य क्षेत्रों को टाइगर रिजर्व घोषित करने की एक तरह की तेजी दिखाई देती है।"

*

भारत के 3,682 बाघों (पैंथेरा टाइग्रिस) में से एक-तिहाई संरक्षित क्षेत्रों के बाहर रहते हैं, और उनका भविष्य उन लाखों लोगों के भविष्य से अलग नहीं किया जा सकता जो इन इलाकों के आसपास रहते हैं।

प्रोजेक्ट टाइगर के 53 सालों में बाघों की संख्या लगभग 2000 से बढ़कर लगभग दोगुनी हो गई है। इसी दौरान भारत की मानव आबादी भी बढ़कर लगभग तीन गुना हो गई है। जमीन पर दबाव बहुत ज्यादा है और टकराव होना तय है।

वन्यजीव जीवविज्ञानी अशरफ शेख कहते हैं, "लक्ष्य सिर्फ बाघों की संख्या बढ़ाने का रहा है, लेकिन इसके नतीजे क्या होंगे, इसकी कोई तैयारी नहीं की गई।" वह चेतावनी देते हैं, "बाघ की स्वाभाविक प्रवृत्ति लगातार घूमने-फिरने की होती है, और वे रिजर्व के भीतर अलग-थलग आबादी के रूप में जीवित नहीं रह सकते।" वह यह भी बताते हैं कि विकास परियोजनाओं के कारण वन्यजीव गलियारे सिकुड़ते जा रहे हैं, जो बड़ा खतरा है।

हर हफ्ते वायरल वीडियो और अखबारों की सुर्खियों में बाघों की तस्वीरें सामने आती हैं, जो कभी घरों में, कभी सार्वजनिक जगहों पर, कभी राजमार्ग पार करते हुए या नदियों में डूबते हुए दिखाई देते हैं। जनवरी से मार्च 2026 के बीच रिजर्व के बाहर (एनटीसीए) करीब 45 बाघों की मौत हो चुकी है।

लेकिन विडंबना यह है कि रिजर्व के भीतर रहने वाले लोग उन्हें शायद ही कभी देख पाते हैं। दमोह के मुन्नालाल जंगली जानवरों की मौजूदगी पर सवाल उठाते हैं। मुन्नालाल कहते हैं, "उनके अनुसार नौराड़ेही में 25 बाघ हैं, लेकिन हमें कम-से-कम एक तो दिखना चाहिए था। हमने आज तक एक भी नहीं देखा, उसका निशान तक नहीं।"

प्रोफेसर रमन सुकुमार कहते हैं, "इतिहास बताता है कि रिजर्व के भीतर आदिवासी और दूसरे समुदायों के रहते हुए भी बाघों की संख्या बढ़ सकती है।" वह तमिलनाडु के सत्यमंगलम और कर्नाटक के बिलिगिरी रंगास्वामी टेंपल रिजर्व का उदाहरण देते हैं। वह कहते हैं, "ऐसे कई टाइगर रिजर्व हैं जहां बाघ ही नहीं हैं, तो पहले वहां उनकी संख्या बढ़ाने पर ध्यान क्यों नहीं दिया जाता? लेकिन बजाय इसके ये हम लोगों को हटाने की जल्दी कर रहे हैं।" ■

इस कहानी की रिपोर्टिंग में मदद के लिए दमोह के चंदन लाल और पन्ना की देवश्री सोमानी का विशेष आभार।
साभार: ruralindiaonline.org

बाघों के लिए अब तक करीब 257 गांवों को विस्थापित किया जा चुका है और 730 गांव क़तार में हैं। इधर के सारे जंगल इसमें समा गए। विस्थापितों को उतना भी नहीं मिला जितने में वे गुजर कर पाते। मूलभूत सुविधाएं भी नसीब में नहीं

> वन्यजीव जीवविज्ञानी अशरफ शेख कहते हैं, "लक्ष्य सिर्फ बाघों की संख्या बढ़ाने का रहा है, लेकिन इसके नतीजे क्या होंगे, इसकी कोई तैयारी नहीं की गई।" वह कहते हैं कि विकास परियोजनाओं के कारण वन्यजीव गलियारे सिकुड़ते जा रहे हैं, जो भविष्य के लिए बड़ा खतरा है

Nehru Centre
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम
वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर मुंबई के हृदयस्थल में, बीकेसी से सटे, एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तम:
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051